भारतीय नरेश
और
राष्ट्रीयता

जगन्नाथ प्रसाद मिश्र

संजय—प्रकाशन
प्रेमनगर
एटा (उ० प्र०)

प्रकाशक
शीला मिश्रा
सजय प्रकाशन
प्रेमनगर, एटा (उ० प्र०)

प्रथम सस्करण 1100
1969

मूल्य { जन सस्करण 3 50
राज सस्करण 7 00

मुद्रक
श्री कम्पोजिंग केन्द्र द्वारा दिल्ली मुद्रणालय किनारी बाजार
बड़ वाली गली दिल्ली 6

समर्पण

अनेकों खण्डो-उपखण्डों मे विभक्त भारत को

एक सघ का रूप प्रदान करने वाले

सरदार वल्लभ भाई पटेल

एव

भारतीय नरेशो

को

अन्तर्मन से

मुझे न तो भूतपूर्व नरेशो से कोई लगाव है और न कांग्रेस अथवा किसी अन्य राजनैतिक दल से कोई शत्रुता । हाँ, अन्याय को चाहे वह किसी के प्रति हो और किसी भी रुप मे क्यो न हो, मैं सहन नही कर पाता, उसका विरोध करना मैं अपना धर्म समझता हूँ ।

भारत का वर्तमान सघ-रूप, नरेशो के स्त्र-उन्मूलन का फल है, इसलिये भारत सघ (दूसरे शब्दो में भारतीय जनता) द्वारा नरेशों के साथ किए गए समझौतो एव प्रतिज्ञा-पत्रो के उन्मूलन का नारा नरेशो के प्रति (और भारतीय जनता के प्रति) घोर अन्याय है तथा 'प्राण जाहुँ वरु वचनु न जाई आप्त वाक्य को अपने सास्कृतिक जीवन का मूल स्वर मानने वाले भारतीय जनमानस द्वारा अपने नरेशो को दिये वचन का भग करना है। इस प्रस्तावित जघन्य के विरोध-स्वरुप यह पुस्तक आपके हाथो मे है ।

राजनीति से अथवा किसी दलवन्दी से न मेरा कोई सम्वन्ध है और न मेरे विचारो के मूर्त रुप इन पृष्ठो का । भारत के एक जिम्मेदार नागरिक के रुप मे मैंने जो कुछ देखा, सुना, पढा एव अनुभव किया, उसे मेरे लेखक ने यहा अभिव्यजित कर दिया है । प्रस्तुत प्रणति प्रणयन काल मे सहयोग देने के लिए प्रियवन्धु श्रीराम कृष्ण शर्मा 'कवँल' का मैं आभारी हूँ ।

मेरा दृष्टिकोण भारतीय जनमानस का किस सीमा तक प्रतिनिधित्व कर पाया है, इसका निर्णय करना सुधि एव प्रबुद्ध पाठको पर है ।

गणतन्त्र दिवस, 1969 — जगन्नाथ प्रसाद मिश्र

विषयानुक्रमणिका

नरेशों की लोक प्रियता

बापू

प्रस्ताव की प्रतिक्रिया

प्रेरणा

"कोई भी आदमी जो सक्रिय अहिंसा मे विश्वास रखता है, सामाजिक अन्याय को, फिर वह कही भी क्यो न होता हो, बर्दाश्त नही कर सकता वह उसका विरोध किये बिना नहीं रह सकता।"

—राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी

प्रिवीपर्सों एवं विशेषाधिकारों के उन्मूलन का राजवंशों प्रभाव

हुई जिसमे निर्णय किया गया कि संविधान की धारा 291 में, जो 'प्रिवीपर्स' के भुगतान के विषय में 'गारण्टी' देती है, संशोधन कर लिया जाए।

उधर भारत सरकार के विधि मंत्रालय ने भी, गृह मंत्रालय को सलाह दी है कि भारतीय नरेशों के पक्ष को बल देने वाली संविधान की धाराओं 291 व 362 को समाप्त कर दिया जाए।

वास्तव में कांग्रेस के प्रस्ताव, मंत्रिमण्डल की आन्तरिक मामलों की समिति के निर्णय व विधिमंत्रालय द्वारा दिये गये सुझाव के औचित्य या अनौचित्य को सही रूप में समझने के लिए इस विषय के कानूनी पक्ष के साथ साथ इसके ऐतिहासिक, सामाजिक, नैतिक एवं राजनीतिक पक्षों का अध्ययन विश्लेषण करना भी बहुत जरूरी है।

सबसे पहले यह जानना आवश्यक है कि स्वाधीनता मिलने के समय और उससे पहले देश की राजनैतिक स्थिति कैसी थी? संगठित भारत के निर्माता सरदार वल्लभ भाई पटेल की छड़ी में वह जादू कैसे आ गया कि जैसे जैसे उनकी छड़ी घूमती गई भारतीय रियासतों ने एक एक करके आत्मसमर्पण कर लिया?

उस छड़ी को जादू की छड़ी बनाने में तत्कालीन नरेशों का कितना हाथ था? उसमें उनका भी कुछ योगदान था या नहीं? उनके और सरदार पटेल के मध्य क्या संधियां हुई थीं? यह वह प्रश्न है जिनका उत्तर बहुत कम लोग जानते हैं और जो जानते हैं वे भी तथाकथित समाजवादियों की निराधार एवं भ्रामक बातों के फेर में पड़कर इस विषय पर निष्पक्ष एवं न्याय संगत दृष्टि नहीं डाल पा रहे।

प्रस्ताव के पारित होने की कहानी

अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति में नरेशों के 'प्रिवीपर्सों' एवं विशेषाधिकारों को समाप्त करने के लिए प्रस्ताव पारित कराने की घटना भी बड़ी मनोरंजक है।

महासमिति के सदस्यों की कुल संख्या 600 है। इस अधिवेशन में भाग लेने के लिए केवल आधे ही सदस्य आ पाये थे। अधिवेशन के अन्त में केवल

बीस सदस्यो की उपस्थिति मे नरेशो के विशेषाधिकारो को समाप्त करने का प्रस्ताव रखा गया, महाराष्ट्र के सदस्य श्री मोहनलाल धारिया ने इस प्रस्ताव मे यह संशोधन प्रस्तुत किया कि विशेषाधिकारो के साथ नरेशो के प्रिवीपर्सो को भी समाप्त कर दिया जाए। तत्कालीन कांग्रेसाध्यक्ष श्री कामराज ने इस विषय मे कोई रुचि नही ली और प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी एव अन्य कांग्रेसी नेता उस समय उपस्थित नही थे। जैसे ही इस प्रस्ताव पर मतदान प्रारम्भ हुआ, उपप्रधान मन्त्री श्री मोरारजी देसाई भी मतदान मे भाग लेने के लिए पहुँच गए। अब सदस्यो की संख्या 21 हो गई। प्रस्ताव के पक्ष मे 17 एव विरोध मे 4 मत पड़े और वह पारित हो गया। इन 17 सदस्यो मे से कुछ ऐसे भी थे जो किसी क्षेत्र का प्रतिनिधित्व नही करते थे। विरोध मे दिए 4 मतो मे से एक मत उपप्रधान मन्त्री का था, जो ठीक मतदान के समय पर केवल अपना विरोध व्यक्त करने के लिए ही वापस आए थे। इस प्रकार महासमिति के सदस्यो की कुल संख्या के तीसवे भाग से भी कम सदस्यो की राय को पूरी महासमिति के ऊपर लाद दिया गया है। लोकतन्त्र प्रणाली के बहुमत का जैसा उपहास इस प्रस्ताव के पारित करने मे हुआ, वह अपने नमूने की एक ही घटना है।

हुई जिसमे निर्णय किया गया कि संविधान की धारा 291 मे, जो प्रिवीपर्स के भुगतान के विषय मे 'गारण्टी' देती है संशोधन कर लिया जाए।

उधर भारत सरकार के विधि मंत्रालय ने भी, गृह मंत्रालय को सलाह दी है कि भारतीय नरेशों के पक्ष को बल देने वाली संविधान की धाराओं 291 व 362 को समाप्त कर दिया जाए।

वास्तव मे कांग्रेस के प्रस्ताव, मन्त्रिमण्डल की आन्तरिक मामलों की समिति के निर्णय व विधिमंत्रालय द्वारा दिये गये सुझाव के औचित्य या अनौचित्य को सही रूप में समझने के लिए इस विषय के कानूनी पक्ष के साथ साथ इसके ऐतिहासिक, सामाजिक, नैतिक एवं राजनीतिक पक्षों का अध्ययन विश्लेषण करना भी बहुत जरूरी है।

सबसे पहले यह जानना आवश्यक है कि स्वाधीनता मिलने के समय और उससे पहले देश की राजनैतिक स्थिति कैसी थी? संगठित भारत के निर्माता सरदार वल्लभ भाई पटेल की छड़ी मे वह जादू कैसे आ गया कि जैसे जैसे उनकी छड़ी घूमती गई भारतीय रियासतों ने एक एक करके आत्मसमर्पण कर दिया?

उस छड़ी को जादुई छड़ी बनाने में तत्कालीन नरेशों का कितना हाथ था? उसमें उनका भी कुछ योगदान था या नहीं? उनके और सरदार पटेल के मध्य क्या सन्धियां हुई थी? यह वह प्रश्न हैं जिनका उत्तर बहुत कम लोग जानते हैं और जो जानते हैं वे भी तथाकथित समाजशास्त्रियों की निराधार एवं भ्रामक बातों के फेर में पड़कर इस विषय पर निष्पक्ष एवं न्याय संगत दृष्टि नहीं डाल पा रहे।

प्रस्ताव के पारित होने की कहानी

अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति में नरेशों के प्रिवीपर्सों एवं विशेषाधिकारों को समाप्त करने के लिए प्रस्ताव पारित कराने का धन्धा भी बड़ी मनोरंजक है।

महासमिति के सदस्यों की कुल संख्या 600 है। इस अधिवेशन में भाग लेने के लिए केवल आधे ही सदस्य आ पाए थे। अधिवेशन के अन्त में केवल

बीस सदस्यो की उपस्थिति में नरेशो के विशेषाधिकारो को समाप्त करने का प्रस्ताव रखा गया, महाराष्ट्र के सदस्य श्री मोहनलाल धारिया ने इस प्रस्ताव में यह संशोधन प्रस्तुत किया कि विशेपाधिकारो के साथ नरेशो के 'प्रिवीपर्सो' को भी समाप्त कर दिया जाए। तत्कालीन काग्रेसाध्यक्ष श्री कामराज ने इस विपय मे कोई रुचि नही ली और प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी एव अन्य काग्रेसी नेता उस समय उपस्थित नही थे। जैसे ही इस प्रस्ताव पर मतदान प्रारम्भ हुआ, उपप्रधान मन्त्री श्री मोरारजी देसाई भी मतदान मे भाग लेने के लिए पहुँच गए। अब सदस्यो की सख्या 21 हो गई। प्रस्ताव के पक्ष मे 17 एव विरोध मे 4 मत पडे और वह पारित हो गया। इन 17 सदस्यो मे से कुछ ऐसे भी थे जो किसी क्षेत्र का प्रतिनिधित्व नही करते थे। विरोध मे दिए 4 मतो मे से एक मत उपप्रधान मन्त्री का था, जो ठीक मतदान के समय पर केवल अपना विरोध व्यक्त करने के लिए ही वापस आए थे। इस प्रकार महासमिति के सदस्यो की कुल सख्या के तीसवे भाग से भी कम सदस्यो की राय को पूरी महासमिति के ऊपर लाद दिया गया है। लोकतन्त्र प्रणाली के बहुमत का जैसा उपहास इस प्रस्ताव के पारित करने मे हुआ, वह अपने नमूने की एक ही घटना है।

इस घटना से स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रस्ताव काग्रेस के आदर्शो के अनुरूप नही है, बल्कि कुछ गिने चुने लोगो की नरेशो के प्रति व्यक्तिगत ईर्ष्या एव द्वेष की प्रतिक्रिया है।

प्रस्तावित निर्णय को लोकतत्री जामा पहनाने के लिए इसे लोक सभा मे लाया गया। जहा सयुक्त समाजवादी दल तथा प्रजा समाजवादी दल के सदस्यों को इसमे भाग लेने के लिए उकसाया गया, और काग्रेसियो से 'ह्विप' के बल पर इसका समर्थन कराया गया।

स्वतन्त्र दल के श्री सी० सी० देसाई ने, जिनका सरदार पटेल से निकट का सम्पर्क रहा था, सदस्यो को सम्बोधित करते हुए प्रश्न किया, "यदि आज सरदार जीवित होते तो क्या इस समूह मे से कोई भी व्यक्ति 'प्रिवीपर्सों' के समाप्ति की बात करने का साहस कर पाता ?" आगे उन्होने सरदार पटेल के वक्तव्यो को उद्धृत करते हुए बताया कि अकेले ग्वालियर के महाराजा ने ही इतनी धनराशि दी है कि नरेशो के 'प्रिवीपर्सो' का बहुत बडा भाग उस राशि से ही चुकाया जा सकता है।

श्री देसाई ने काग्रेस पर प्रत्यक्ष आरोप लगाते हुए कहा, "आपका कहना उचित है, नरेश अब अपनी रियासते आपको सौप चुके है और आपके शिकजे

म नम गए हैं। इसलिए आप चाहें तो अब उनके गले में फासी भी लगा सकते हैं।"

श्री प्रेम एथानी ने भी कांग्रेस पर आरोप लगाया कि वह सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करने में लग गई है। उन्होंने सरदार पटेल की सत्यनिष्ठा पर विशेष बल देते हुए कहा कि सरकार ने कई बार दुहराया था कि मैंने नरेशों को वचन दिया है। रियासतों में क्षेत्र व सम्पत्ति के रूप में हमें जो कुछ मिला है, वह बहुमूल्य है। इसका अर्थ है, उस महान नेता ने नरेशों के 'प्रिवीपर्सों अधिकारों एवं विशेषाधिकारों को अक्षुण्ण रखने का दायित्व अपने ऊपर ले लिया था ताकि कालान्तर में कोई उन्हें उनसे वंचित करने की बात न कह सके।

प्रस्ताव एवं भारत सरकार

संविधान में संशोधन करने के लिए लोक सभा के दो तिहाई सदस्यों का एक मत होना अनिवार्य है। दुर्भाग्य से आज सदन में कांग्रेस के दो तिहाई सदस्य नहीं हैं, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वह अपने इस कुमन्त्रणाजन्य प्रस्ताव को सदन में नहीं लाएगा। उसे इस बार का पूर्ण विश्वास है कि गैर कांग्रेसी वामपक्षी दलों के सदस्य तथाकथित समाजवाद के नाम पर उसकी इस कुमन्त्रणा में साथ देंगे और कांग्रेस, नरेशों के प्रति अपनी द्वेषात्मक प्रवृत्ति के मूर्त रूप, इस प्रस्ताव पर उनके मत प्राप्त करने में सफल हो जाएगी। किन्तु क्या ऐसा करना देश की पचास करोड़ जनता के साथ विश्वासघात नहीं होगा? भारतीय जनता द्वारा नरेशों को दिये वचन को भंग करने के पक्ष में मत देना भारतीय जनता का सच्चा प्रतिनिधित्व किस प्रकार हो सकता है?

पिछले आम चुनावों में लगभग 40 प्रतिशत मत प्राप्त करने वाली कांग्रेस भारतीय जनता का सही प्रतिनिधित्व नहीं करती, फिर नरेशों के अनुबन्ध एवं प्रसंविदाएं तो भारत सरकार (अर्थात् भारतीय जनता) से हुए हैं न कि कांग्रेस से। किसी एक दल के विचार राष्ट्र पर थोप देना अन्याय नहीं तो क्या है?

अगस्त में रूस का चकोस्लोवाकिया पर सशस्त्र आक्रमण भी इसी द्वेषजन्य प्रतिक्रिया का मूर्त रूप है। चकोस्लोवाकिया का अपराध यदि कुछ था

तो केवल इतना कि उसने रूसी प्रभुत्व से मुक्त हो कर एक स्वाधीन देश की भाँति सम्मानित जीवन व्यतीत करने का निर्णय किया था तथा इस दिशा मे सद् प्रयत्न करने आरम्भ कर दिये थे। यद्यपि रूस के अधिकाश नेता इस निन्दनीय कदम को उठाने के पक्ष मे नही थे किन्तु कुछ सकुचित प्रवृत्ति के व्यक्तियो ने येन-केन-प्रकारेण अपनी कुमन्त्रणा को व्यावहारिक रूप दिलवा दिया—और उसके लिए अपयश का भागी बनना पडा है रूसी जनता को क्योकि अब कोई उसकी सद्भावना को निश्शक दृष्टि से देखने को तैयार नही। इसी प्रकार काग्रेस का यह प्रस्ताव केवल कुछ कुण्ठाग्रस्त व्यक्तियो की सकुचित द्वेष भावना का साकार रूप है जिसके अपयश का भागी काग्रेस के उस शेष विशाल वर्ग को बनाना पडेगा जिसकी इसमे कोई सक्रिय रुचि नही है। नरेशो का अपराध यदि कुछ है तो केवल इतना ही कि उन्होने देश को वर्तमान दूषित एव भ्रष्ट वातावरण से मुक्त कराके इसमे श्रेष्ठ प्रशासन स्थापित करने की जन साधारण की इच्छा मे अपना सक्रिय सहयोग देना अपना पावन कर्त्तव्य समझा और पिछले आम चुनावो मे एक मूक दर्शक की भूमिका न निभाकर सक्रिय भाग लिया, जिससे इन तथाकथित समाजवादियो को अपना आसन हिलता नजर आया और उन्होने यह कुत्सित प्रस्ताव सम्पूर्ण काग्रेस पर थोप दिया। यदि दुर्भाग्यवश, यह प्रस्ताव लोकसभा में पारित हो गया तो सोचिये कि फिर विश्व की दृष्टि मे भारतीय जनता की सद्भावना एव सदास्था का क्या मूल्य रह जाएगा।

काग्रेस के इस प्रस्ताव का समर्थन करने वालो मे वे लोग भी है, बल्कि वे ही इस प्रस्ताव से अधिक प्रसन्न भी है, जिनके मक्का-मदीना, मास्को एव पेकिंग है, जहाँ पर समाजवाद की वेदी पर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को बलिदान कर मानव को जीवित शव मे परिणत कर दिया गया है।

फ्राँस मे आज भी 'नाइट' है, इग्लैड मे आज भी 'लार्ड' है और इन दोनो देशो का विश्व के लोकतान्त्रिक देशो मे अग्र स्थान है। सच तो यह है कि इन देशो मे लोकतन्त्र की नीव इतनी गहरी है कि उसे दो-दो महायुद्धो का भूकम्प भी नही हिला सका।

आश्चर्य इस बात का है कि काग्रेस के वरिष्ठ नेता इन सब तथ्यो से भली-भाँति अवगत होते हुए भी इस गलत कदम को रोकने के स्थान पर इसे ससदीय स्वीकृति दिलाने का दुष्प्रयत्न कर रहे है। यदि उनका कहना यह है कि वे अपने दल की महासमिति मे पारित प्रस्ताव को व्यावहारिक रूप

दने के लिए बाध्य है तो मैं उनसे यह जानना चाहता हूँ कि क्या वे सम्पूर्ण राष्ट्र द्वारा, और ध्यान रखिये कि राष्ट्र के सामने दल का कोई महत्व नहीं है नरेशों को दिए वचनों को पालन करने के लिए बाध्य नहीं है ? क्या राष्ट्र की बागडोर सभाले इन नेताओं को जो स्वयं को प्रबुद्ध एवं विवेकी बतलाते है, यह छोटी सी बात समझमें नहीं आती कि इस प्रस्ताव के ससद में पारित होने से सिवा मास्को पीकिंग भक्तों के और किसी का कोई लाभ नहीं होगा हाँ विश्वजनीन निन्दा एवं अपयश का भागी अवश्य बनना पड़ेगा ? और जहा तक मास्को पीकिंग भक्तों का प्रश्न है उनके तो दोनों हाथों में लड्डू है। यदि यह प्रस्ताव अधिनियम बन गया तो उनकी लोकतन्त्रघाती कुमन्त्रणा सफल हो गई और यदि यह प्रस्ताव अधिनियम न बन सका तो उन्हें कांग्रेस पर कीचड़ उछालने का एक अच्छा बहाना मिल जाएगा।

एक ओर तो वे नरेशों के प्रिवीपर्सों एवं विशेषाधिकारों का समाप्त कराने का श्रेय लेकर जनसाधारण पर यह प्रभाव डालने का प्रयास करेंगे कि बिना उनके प्रयत्नों एवं सहयोग के यह काम सम्भव नहीं था। दूसरी ओर अपने नेताओं के वचन भंग करने व नैतिकता से गिर जाने के जो भी दुष्परिणाम होंगे वे अकेली कांग्रेस को ही भुगतने होंगे जिसका वे दूसरी तरह से लाभ उठायेंगे। इसे कहते है अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारना। अपनी अदूरदर्शिता की शिकार निरीह (?) कांग्रेस !

इस अधिवेशन की समाप्ति के समय प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाधी ने अपने भाषण मे स्वयं को प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व से बचाते हुए यह स्वीकार किया है कि पिछले आम चुनावों में कांग्रेस की विफलता का कारण कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, बल्कि पिछले कई वर्षों से कांग्रेस निरन्तर दुर्बल होती जा रही थी। उन्होंने महासमिति के कुछ सदस्यों द्वारा कांग्रेस के नेतृत्व के प्रति की गई आलोचना का स्वागत करते हुए कहा कांग्रेस के हर प्रगतिशील कदम ने नए शत्रु उत्पन्न किए हैं और उसे नयी चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। उन्होंने यह स्पष्ट नहीं किया कि वे प्रगतिशील कदम कौन से थे, जिनके कारण उनके दल को पराजय का मुख देखना पड़ा।

ससद् में नरेशों के प्रिवीपर्सों एवं विशेषाधिकारों को समाप्त करने का कदम उठाने से पहले कांग्रेसी सदस्यों को प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के उपर्युक्त कथन को ध्यान में रखते हुए यह सोच लेना चाहिए कि कहीं उनका यह कदम भी अन्य कदमों की भांति नये शत्रु उत्पन्न करने वाला एवं नयी चुनौतियों को जन्म देने वाला तो नहीं है ?

भारत संघ का गठन

विभाजन

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व हमारे देश के क्षेत्रफल का दो तिहाई भाग और तीन चौथाई जनसंख्या ब्रिटिश भारत के अन्तर्गत थी, शेष एक तिहाई भाग मे छोटी बडी 565 भारतीय रियासते थी। ये रियासते सीधे ब्रिटिश शासन के अन्तंगत नही थी, बल्कि भारतीय नरेशो के साथ कुछ विशेष समझौतो के अनुसार ही इग्लैड के बादशाह का उन पर अधिकार था, इसलिए भारत को स्वाधीनता देते समय ब्रिटिश सरकार ने कानून व नैतिकता की दृष्टि से इन रियासतो को पूर्ण स्वतन्त्र ही माना।

भारतीय स्वाधीनता अधिनियम 1947 बनने से पूर्व इग्लैड से एक मन्त्रि-मडलीय शिष्ट मडल भारत भेजा गया था, जिसने 12 मई 1946 को यह ज्ञापन घोषित किया था—

"इग्लैड के बादशाह से समझौता होने के फलस्वरूप जो अधिकार भारतीय रियासतो को मिले थे, वे अब समाप्त हो जायेगे तथा भारतीय रियासतो ने अपने जो अधिकार सार्वभौम सत्ता को समर्पित कर दिये थे, उनको फिर वापस मिल जायेगे। इस प्रकार इंग्लैड के बादशाह एव ब्रिटिश भारत के साथ अब तक चले आ रहे भारतीय रियासतो के राज-नैतिक सम्बन्ध समाप्त हो जायेगे—इस शून्य को भरने के लिये भारतीय रियासतो को ब्रिटिश भारत की उत्तराधिकारी सरकार या सरकारो से सघीय अथवा विशिष्ट राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित करने होगे।"

16 मई 1946 को उसी शिष्ट मण्डल ने अपनी यह योजना घोषित की —

सार्वभौम सत्ता न तो इंग्लैंड के बादशाह के पास रह सकती है और न नयी सरकार को हस्तान्तरित की जा सकती है।"

फिर 3 जून 1947 को ब्रिटिश सरकार का वक्तव्य प्रकाश में आया

'इंग्लैंड के बादशाह की सरकार इस बात को बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहती है कि मंत्रिमंडलीय शिष्टमंडल के 12 मई 1946 के ज्ञापन में घोषित भारतीय रियासतों से सम्बंधित नीति में कोई परिवर्तन नहीं होगा।'

इस वक्तव्य को कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने ही स्वीकार किया और आगे चलकर यही उत्तराधिकारी सरकारों को सत्ता हस्तान्तरित करने की पद्धति का आधार बना।

अतः भारत को स्वाधीनता देने के लिए भारतीय स्वाधीनता अधिनियम 1947 बनाया गया, जिसके अनुसार ब्रिटिश भारत को भारत व पाकिस्तान दो अधिराज्यों में विभाजित किया गया।

भारतीय रियासतों के विषय में भारतीय स्वाधीनता अधिनियम 1947 का खंड 7 इस प्रकार है —

नये राज्यों की स्थापना के परिणाम — (1) नियत दिवस 15 अगस्त 1947 से (ब) भारतीय रियासतों पर से इंग्लैंड के बादशाह का आधिपत्य समाप्त होता है और इसके साथ साथ वे समस्त संधियां एवं समझौते भी जो इंग्लैंड के बादशाह और भारतीय रियासतों के शासकों के बीच में हुये थे।

× × ×

इस उपखंड के अनुच्छेद (ब) और (स) में किसी विशिष्ट व्याख्या के न रहने पर भी आयात कर, परिवहन संचार डाक तार या इसी प्रकार के अन्य मामलों में सम्बंधित पुराने समझौते ही उस समय तक मान्य होंगे जब तक कि भारतीय रियासतों के शासक कबीलों के सरदार अथवा अधिराज्य और प्रदेश की सरकार उनको अमान्य घोषित न कर दें या फिर नये समझौतों के अस्तित्व में आने से वे स्वयं रद्द न हो जायें।'

प्रस्तुत उपखड से यह स्पष्ट है कि भारतीय रियासतो पर किसी भी सत्ता या सरकार का आधिपत्य नही था। आयातकर, सचार, डाक-तार आदि से सम्बन्धित जो समझौता ब्रिटिश सरकार और भारतीय रियासतो के बीच था, उसे ही एक विशिष्ट उपखड के द्वारा चालू रखा गया था। किन्तु वह भी कोई प्रतिबन्ध नही था बल्कि किसी भी क्षण, किसी भी रियासत का शासक उसे अपनी रियासत के लिये अमान्य घोषित कर सकता था।

ब्रिटिश सरकार की कई घोषणाओ मे यह भी कहा गया था कि रियासते चाहे तो उस अधिराज्य के साथ मिल सकती है, जिसके साथ उनकी भौगोलिक सीमाए मिलती हो।

इस प्रकार हर भारतीय रियासत के शासक को यह अधिकार प्राप्त था कि वह चाहे तो पूर्ण स्वतन्त्र रहे अथवा भारत या पाकिस्तान किसी भी अधिराज्य मे, जिसके साथ भी उसके राज्य की भौगोलिक सीमाए मिलती हो, अपनी रियासत को मिला दे या फिर जैसा चाहे वैसा समझौता कर ले।

रियासतों की सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न स्थिति

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय हमारे देश के सामने सबसे बडा राजनैतिक प्रश्न यही था कि क्या देशी राज्यो के राजा-महाराजा, राष्ट्रीय एकता की वेदी पर अपनी रियासतो की बलि देने जैसा महान् त्याग कर सकेगे ? क्योकि इन रियासतो के भारत मे मिले बिना हमारी स्वाधीनता अधूरी थी।

भारत के मध्य मे स्वस्तिक के आकार मे फैली इन रियासतो का, राष्ट्र को अखड बनाने के लिये, भारतीय अधिराज्य मे विलय होना कितना महत्व-पूर्ण था, यह प्रसिद्ध अगरेज विद्वान कूपलैड के इस कथन से स्पष्ट होता है:—

"यदि भारत के उत्तर-पश्चिमी और उत्तर-पूर्वी मुसलमानी अगो को काट भी दिया जाये, तो उसका जीवित रह सकना सम्भव है, किन्तु क्या वह अपने हृदय के बिना जीवित रह पायेगा ?"

उस समय देशी नरेशो के समक्ष भी एक समस्या थी, वे इस शून्य की स्थिति को उत्पन्न होने से पहले ही भर देना चाहते थे।

भारतीय अधिराज्य में कांग्रेस की समाजवादी नीति के अनुसार रियासतों के अस्तित्व को खतरे में समझते हुए भी कुछ रियासतों ने भारत में ही मिलन की इच्छा प्रगट की, केवल कुछ ने ही स्वयं को स्वतंत्र रखना चाहा। एक दो रियासतें पाकिस्तान के साथ भी मिलना चाहती थी।

इस विषम स्थिति से निबटने के लिये भारत की भावी सरकार (उस समय की अंतरिम सरकार) ने भारतीय रियासतों के शासकों को आमंत्रित किया कि वे प्रतिरक्षा, पर राष्ट्र सम्बन्ध एवं संचार तीन विषय भारतीय अधिराज्य को समर्पित कर दें।

शासकों के सामने ऐसा प्रस्ताव रखते समय उन्हें यह आश्वासन दिया गया कि इन तीन क्षेत्रों के अतिरिक्त उनकी स्थिति पूर्ववत् रहेगी और इस समर्पण के फलस्वरूप उन पर किसी प्रकार का आर्थिक भार नहीं पड़ेगा। उनकी आन्तरिक स्वायत्तता और प्रभुसत्ता पर भी किसी प्रकार का अतिक्रमण नहीं होगा। भारतीय संविधान को स्वीकार करने के लिये भी वह बाध्य नहीं होंगे।

देशी राज्यों के शासकों ने भारत सरकार की बात मान ली और उन्होंने भारत अधिराज्य को ब्रिटिश सार्वभौम सत्ता से उत्तराधिकार में मिले भारतीय स्वाधीनता अधिनियम 1947 खंड 7 में निहित उपबन्ध—जिसके अंतर्गत आयात कर, संचार, डाक तार आदि विशिष्ट मामलों के सम्बन्ध में केन्द्रीय एवं प्रान्तिक सरकारों तथा भारतीय रियासतों के बीच अस्थायी समझौता था—उसी उपखंड के अन्तर्गत उपयुक्त (प्रतिरक्षा, पर राष्ट्र सम्बन्ध एवं संचार) केवल तीन विषयों में अपनी रियासतों को भारतीय संघ में मिलाने के लिये एक संविलयन प्रलेख पर 15 अगस्त 1947 से पूर्व ही हस्ताक्षर कर दिये जिसमें स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया गया था —

> 'इस प्रलेख में कोई ऐसी बात नहीं है जिससे इस रियासत पर मेरी प्रभुता में किसी प्रकार का अन्तर पड़े। इस रियासत के शासक के रूप में जो सत्ता एवं अधिकार इस समय मुझे प्राप्त है, वह इस प्रलेख पर हस्ताक्षर करने के बाद भी यथावत् रहेगा।"

इसी विषय पर 5 जुलाई 1947 को सरदार वल्लभभाई पटेल ने यह वक्तव्य भी दिया —

> इस मूल सिद्धान्त को रियासतों ने पहले ही स्वीकार कर लिया है कि प्रतिरक्षा, परराष्ट्र सम्बन्ध तथा संचार की दृष्टि से वे भारतीय

रखती है तब राजनैतिक दृष्टि से केन्द्रीय सरकार व रियासतो के बीच एक गहरी खाई उत्पन्न हो जायेगी तथा आर्थिक एवं अन्य क्षत्रो मे अखिल भारतीय नीतियो का समन्वय नही हो पायेगा, और रियासतो मे रहने वाली 8 करोड़ 90 लाख जनता लोकतन्त्र व अधिकारो से वंचित रह जायगी। इस स्थिति म भारतीय सघ कभी भी एक विकसित राष्ट्र का सही रूप ग्रहण नही कर सकेगा।

अत भारत सरकार व रियासत मत्रालय ने देशी नरेशो के सामने उपयुक्त सभी बातें रखते हुए रियासतो के एकीकरण का एक प्रस्ताव रखा।

उस समय नरेशो के सामने व सभी आश्वासन भी थ जो उनसे मविलयन प्रलेखा पर हस्ताक्षर कराते समय भारत सरकार ने उन्हे दिये थे इसलिए सरकार इस प्रस्ताव के प्रसग मे उनके साथ न तो नतिक रूप से किसी प्रकार का बल प्रयोग ही कर सकती थी और न इसकी कोई चेष्टा ही की गई। यह तो भाईचारे के रूप म नरेशो को सघ हित का एक भाग बताया गया था जिसे अपनाना या न अपनाना पूर्णत उनकी इच्छा पर निर्भर करता था।

नरेश भारतीय सस्कृति के प्रतीक रहे थे उन्होने अपनी परम्पराओ के द्वारा जिस सस्कृति को अक्षुण्ण रखा था उसके अनुसार राजतन्त्र मे भी प्रजा की इच्छा ही सर्वोपरि होती है और राजा शासक होते हुए भी केवल प्रजा का सरक्षक मात्र होता है। उन्होने समय की गति को पहचान कर अपनी सस्कृति के अनुरूप समस्त भारतीय जनता की इच्छा का आदर करते हुये, अपनी प्रजा के हित मे एव भारतीय राष्ट्र को सुदृढ बनाने के लिये रियासत मत्रालय के इस प्रस्ताव को भी बड़ उत्साह से स्वीकार कर लिया और एक एक करके 554 रियासतो ने सविलयन अनुबन्धो व प्रसविदाओ (मजर एग्रीमेटस एण्ड कावनेन्ट्स) पर हस्ताक्षर कर दिये।

इस तरह जो काम मुसलमान 700 वर्षो मे अपनी तलवारो और अगरेज 200 वर्षो म अपनी कूटनीतियो से न कर सके, भारतीय नरेशो की राष्ट्रीय भावना प्रजा की हितचिन्तना और त्याग वृत्ति ने वही काम एक रक्तहीन क्रान्ति के रूप म, सरदार पटेल के द्वारा करा दिया।

इस विषय मे भारतीय रियासतो पर प्रकाशित श्वेत पत्र के पहले पृष्ठ पर निम्नलिखित शब्दो म शासको की सराहना की गई है

'छोटे-बडे समस्त राजाओ ने युग के अनुरूप स्वय को ढालकर इस भामक

धारणा के खण्डन करने मे अपना अपूर्व सहयोग दिया कि भारतवर्ष की स्वाधीनता राजा-महाराजाओ के दुराग्रह की शिला से टकरा कर चूर-चूर हो जायेगी। लोकतन्त्र भारत का भवन भारत के राजा-महाराजाओ तथा जन-साधारण के समन्वित प्रयत्न की सच्ची आधारशिला पर खड़ा है।'

यह राजा-महाराजाओ के आत्मोत्सर्ग का ही फल है कि आज भारत कई शताब्दियो के बाद, एक सांविधानिक सत्ता के रूप मे खड़ा है और उसने राजनीतिक एकीकरण के आदर्श रूप को प्राप्त किया है। शासको के स्व-उन्मूलन ने भारत के इतिहास को एक नवीन दिशा प्रदान की है। 'राजा-महाराजाओ के देशभक्तिपूर्ण सहयोग के बिना, जन-साधारण एव शासको के परस्पर कल्याण की दिशा मे हुआ भारत मे यह विशाल परिवर्तन सम्भव ही नही था। व्यक्तिगत शासन की पद्धति के अभ्यस्त शासको के लिए यह नयी व्यवस्था एक आमूल-चूल परिवर्तन के समान है। उन्होने इस परिवर्तन को शान्तिपूर्वक अपनाकर कल्पना, दूरदर्शिता एवं देशभक्ति का परिचय दिया है। जनहित एवं जन-भावना को पहचान कर उन्होंने अपनी रियासतो को भारत मे विलय कर दिया तथा उनकी सत्ता जनसाधारण को अन्तरित कर दी। वे स्वय को उस स्वतन्त्र एवं लोकतान्त्रिक भारत का सह-शिल्पी कह सकते हैं, जिसमे प्रान्तो एव रियासतो के लोग स्वाधीनता का समान रूप मे रसास्वादन करेंगे और स्वतन्त्र भारत के नागरिको के रूप मे एक साथ आगे बढ़ेंगे।' —भारतीय रियासतो पर श्वेत पत्र, पृष्ठ 146-147

रियासतों की देन

भारतीय अधिराज्य का कुल क्षेत्रफल 12,60,853 वर्गमील है, जिसमे 5,87,949 वर्गमील का क्षेत्र इन रियासतों की देन है। दूसरे शब्दो मे गण-तत्र भारत के क्षेत्रफल का 47 प्रतिशत भू-भाग इन रियासतो का योगदान है। 84,471 वर्गमील वाली जम्मू एव काश्मीर रियासत तथा 82,213 वर्ग मील वाली हैदराबाद रियासत इन रियासतो मे सबसे बड़ी थी। 10,000 वर्गमीलसे अधिक क्षेत्र वाली 15 रियासतें थी 1000 और 10,000 वर्गमील के बीच के क्षेत्र वाली 67 रियासतें थी तथा 10 वर्गमील से कम क्षेत्र वाली 202 रियासते थी।

जनसंख्या की दृष्टि से भी इन रियासतों का योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं है। 1941 की जनगणना के अनुसार विभाजन के बाद भारत अधिराज्य की जनसंख्या 31 करोड़ 90 लाख थी जिसमें से 8 करोड़ 90 लाख इन रियासतों की थी। दूसरे शब्दों में भारत अधिराज्य की 28 प्रतिशत जनसंख्या इन रियासतों में रहती थी।

अब इन रियासतों का प्रशासन संभाला गया था तो भारत सरकार एवं प्रान्तों की सरकारों को—उत्तराधिकार में 77 करोड़ रुपए की नकदी एवं विनियोग की प्राप्ति हुई थी। इसका बहुत बड़ा भाग शासकों ने उद्योगों में विनियुक्त कर रखा था। व्यक्तिगत सम्पत्ति के निर्धारण के समय शासकों ने 1500 से अधिक गाँव छोड़ दिए थे। इसके साथ ही उन्होंने जागीर की हजारों एकड़ भूमि सरकार को दे दी थी। लगभग साढ़े चार करोड़ रुपए तक के उनके अपने दावों को भी छोड़ दिया था। जो अन्य सम्पत्ति उन्होंने छोड़ी उसमें महल, सचिवालय भवन, अस्पताल, रेल मार्ग, वायुयान आदि अनेक वस्तुएँ थीं। कुछ शासकों के निजी स्थित भवनों का मूल्य जो आज भारत सरकार के अधिकार में हैं कई लाख रुपए है।

इसके अतिरिक्त 12000 मील लम्बी रेल व्यवस्था केन्द्र को मिली जिससे राजस्व आय में महत्वपूर्ण बढ़ोतरी हुई है, तथा स्थान स्थान पर लगने वाला आयात कर समाप्त हुआ और व्यापार एवं वाणिज्य को विकसित होने का अप्रतिम अवसर मिला।

संविलयन अनुबन्ध एवं प्रसंविदाएँ

26 जनवरी 1950 अर्थात् गणतन्त्र भारत के जन्म तक 554 रियासते भारत मे मिल चुकी थी तथा उन्होने स्वय को गणतन्त्र के रग मे रग लिया था। इन रियासतो के शासको ने 'सविलयन प्रालेख' (इस्ट्रुमैण्ट्स आफ एक्सेसन) पर हस्ताक्षर कर के गणतन्त्र की आधार-शिला को सुदृढ बना दिया था। इनमे से 551 रियासते तो 15 अगस्त 1947 के पहले ही भारतीय अधिराज्य मे विलय हो गई थी, किन्तु तीन बाद मे पर 26 जनवरी 1950 के पहले ही विलय हुई।

सविलयन प्रालेखो (इस्ट्रुमैण्ट्स आफ एक्सेसन) के बाद **सविलयन अनुबन्धो या प्रसविदाओं** (मर्जर ऐग्रीमैण्ट्स और कॉवनेण्ट्स) पर हस्ताक्षर हुए, जिसके फलस्वरूप 216 रियासते तो अपने-अपने सलग्न प्रदेश—राज्यो मे विलीन हो गई, 61 रियासते सीधी केन्द्रीय अनुशासन के भीतर आई तथा 275 रियासते नये राज्यो के रूप मे परिणत हो गई। केवल दो रियासतो—हैदराबाद और काशमीर ने—इन अनुबन्धो पर हस्ताक्षर नही किए और वे गणतन्त्र भारत मे नये प्रदेशो के रूप मे सामने आई।

सविलयन प्रालेखो के अन्तर्गत तो रियासतो ने केवल तीन विषय - प्रतिरक्षा, परराष्ट्र सम्बन्ध एव सचार—अधिराज्य सरकार को सोपे थे तथा शेष विषयो मे उनकी प्रभुता स्वतन्त्र रही थी, किन्तु सविलयन अनुबन्धो और प्रसविदाओ पर हस्ताक्षर करके रियासतो के शासको ने अपनी सम्पूर्ण शासन-सत्ता एव रियासत की क्षेत्रीय अखण्डता अधिराज्य सरकार को सौप

गी जिसके फलस्वरूप ये रियासतें गणतन्त्र भारत के संवैधानिक एवं राजनैतिक जीवन का एक अंग बन गई और उनकी स्वतन्त्र सत्ता समाप्त हो गई।

सविलयन अनुबन्ध और प्रसंविदाओं के अन्तर्गत भारतीय नरेशों को यह वचन दिया गया था कि उनके व्यक्तिगत अधिकार एवं विशेषाधिकार यथावत् रहेंगे तथा उनके प्रिवीपर्स चालू रहेंगे। जैसा कि मार्च 1950 में भारत सरकार ने भारतीय रियासतों पर श्वेत पत्र प्रकाशित कर स्वीकार किया था

"प्रदेश संघों की स्थापना करने वाले सविलयन अनुबन्ध तथा प्रसंविदा हस्ताक्षरकर्त्ता शासकों के लिये अन्तिम अनुबन्ध हैं। जहां इनके अन्तर्गत रियासतों के एकीकरण तथा शासकों से सत्ता हस्तान्तरण का विधान है वहां शासकों को प्रिवीपर्स की गद्दी के उत्तराधिकार की, व्यक्तिगत अधिकारों एवं विशेषाधिकारों की तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति (रियासत की सम्पत्ति से भिन्न) के स्वामित्व एवं उसके उपयोग उपभोग की पूर्ण गारंटी दी जाती है।

शासकों के व्यक्तिगत अधिकारों, विशेषाधिकारों एवं प्रिवीपर्सों के सम्बन्ध में सभी सविलयन अनुबन्धों तथा प्रसंविदाओं में इस प्रकार की व्यवस्था मौजूद पाई जाती है। भारत सरकार प्रत्येक सविलयन अनुबन्ध में एवं संविदाकारी, प्रत्येक प्रसंविदा में सहमति देने वाली एवं उसमें लिखित प्रत्येक व्यवस्था की गारंटी करने वाली है। ग्वालियर, इन्दौर एवं मध्य भारत की कुछ अन्य रियासतों को मिला कर ग्वालियर इन्दौर एवं मालवा का संयुक्त प्रदेश' (मध्य भारत) बनाते समय इन रियासतों के शासकों तथा भारत सरकार के बीच जो प्रसंविदा हुआ था उसके प्राक्कथन एवं कुछ प्रसंगोचित धाराओं के अवलोकन से यह भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है। उसमें लिखा गया है कि

ग्वालियर, इन्दौर तथा मध्य भारत की कुछ अन्य रियासतों के हम शासक लोग इस बात से सहमत होकर कि इस क्षेत्र के लोगों का हित इसी में है कि हमारी रियासतों को एकीभूत करके एक नया प्रदेश बना दिया जाए जिसमें सब कार्यांग हो सब विधानांग हो तथा सब न्यायांग हो तथा यह निश्चय करके कि (भारतीय संविधान के अन्तर्गत) इस प्रदेश के लोकतान्त्रिक संविधान के बनाने का काम जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों की संविधान सभा को सौंप दिया जाए।

भारत सरकार की सहमति एव गारण्टी मिलने के बाद, निम्नलिखित प्रसविदा करते है—

धारा ११

(1) प्रत्येक प्रसविदाकारी रियासत के शासक को सयुक्त प्रदेश के राजस्व से प्रतिवर्ष अपने प्रिवीपर्स के रूप में उतनी राशि लेने का अधिकार होगा जितनी कि अनुसूची 1 मे उस प्रसविदाकारी रियासत के नाम के सामने लिखी है।

ग्वालियर एव इन्दौर रियासतों के सामने लिखी प्रिवीपर्स की यह राशि केवल वर्तमान शासको को मिलेगी, उनके उत्तराधिकारियों को नही। उत्तराधिकारियों के लिए इस सम्बन्ध मे नयी व्यवस्था की जाएगी।

(2) उपरिलिखित धन राशि देने का लक्ष्य यह है कि शासक तथा उसके परिवार के समस्त खर्च इससे चलते रहे। इन खर्चो मे परिवार मे होने वाले विवाह, मनाये जाने वाले उत्सव, निवास-स्थानो की देखरेख आदि पर होने वाले समस्त खर्च शामिल है। यह राशि अनुच्छेद (1) की व्यवस्था के अधीन है तथा किसी भी कारण से न बढाई जाएगी और न घटाई जाएगी।

(3) यह राजप्रमुख की जिम्मेदारी है कि वह उपरिलिखित धनराशि प्रत्येक शासक को तिमाही के प्रारम्भ मे दे दे। इस प्रकार यह राशि चार समान किश्तो मे दी जाएगी।

(4) उक्त धनराशि समस्त करो से मुक्त होगी चाहे वे कर सयुक्त प्रदेश की सरकार ने लगाए हो चाहे भारत सरकार ने।

धारा १३

प्रत्येक प्रसविदाकारी रियासत के शासक तथा उसके परिवार के सदस्यो के व्यक्तिगत अधिकारों, विशेषाधिकारो, आदर-सम्मान तथा उपाधि-पदों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आएगा। जिस रूप में ये चीजें 15 अगस्त 1947 के दिन के एकदम पहले हैं, भविष्य में यथावत् रहेगी।

बिल्कुल यही बात भारतीय नरेशो के प्रिवीपर्सो एवं विशेषाधिकारो के विषय मे है—उन्होंने अपनी रियासतें व शासन सत्ता भारतीय अधिराज्य को सौंप दी। किन्तु अपने व अपने परिवार के लिये रियासत की वार्षिक आय का कुछ अंश प्रिवीपर्स के रूप मे निश्चित कर लिया और साथ ही कुछ अधिकार भी अपने पास रख लिये।

ये अनुबन्ध एवं प्रसंविदायें संविधान लागू होने से पहले की हैं और तभी से लागू भी है। संविधान सभा जो सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न थी उसने इन अनुबन्धो एवं प्रसंविदाओं को उनके उसी रूप मे स्वीकार करके एक प्रकार से अपने रजिस्ट्रेशन की मुहर लगा दी। भारत सरकार तो व्यवस्था के लिये एक ट्रस्ट है। उसे यह अधिकार कैसे प्राप्त हो सकता है कि नरेशो के प्रिवीपर्सों एवं विशेषाधिकारों को बिना उनकी इच्छा के बलपूर्वक छीन ले?

प्रिवीपर्सों एवं विशेषाधिकारो को यथावत् बने रहने देने मे तो सरकार की कोई उदारता नही है। छीन लेने मे बेईमानी अवश्य है।

वास्तव मे संविलयन अनुबन्धो एवं प्रसंविदाओ पर नरेशो के हस्ताक्षर कराने के लिये उपाधियो एवं विशेषाधिकारो की गारंटी ही ऐसा आश्वासन था, जिसके कारण उन्हें अपनी रियासतो को भारत मे विलीन कराने मे कोई झिझक नही हुई। उन्होंने सोचा—यह ऐसा समझौता है, जिसमे हमारा सम्मान भी बना रहेगा और प्रजा का भी हित हो जायेगा।

आज तक कभी किसी नरेश ने अपने विशेषाधिकारो का प्रयोग नही किया?

सरकार ने अनुसूचित जातियो और कबीलो को भी तो कुछ विशेषाधिकार दे रखे है। इससे जातिवाद को तो प्रोत्साहन मिल ही रहा है सरकारी नौकरियो व चुनावो मे अन्य जातियो के अधिकारो का भी प्रत्यक्ष हनन होता है।

सरकार को चाहिये पहले इन बनावटी और जातिवाद को प्रोत्साहन देने वाले विशेषाधिकारो को समाप्त करे, जिनके उपयोग और दुरुपयोग से समाज के अवांछनीय एवं पिछले तत्व पनप रहे हैं अनुशासन हीनता बढ़ रही है और न्याय का गला घुट रहा है।

रही नरेशो की उपाधियो की बात—आज भी भारत सरकार पद्म भूषण पद्मश्री व भारतरत्न इत्यादि सम्मानसूचक उपाधियाँ देती है।

ताओ को चाहे उस विषय का ज्ञान न हो, किन्तु विश्वविद्यालय उन्हे किसी वेशेप विषय मे 'डाक्टर' की उपाधि देकर सम्मानित कर देते है।

जिस वश मे शताब्दियो से जनता द्वारा मान्य उपाधियाँ चली आ रही है, उन्हे एकदम मिटाया नही जा सकता।

ब्रिटिश सरकार द्वारा दी गई, रायसाहब, रायबहादुर आदि उपाधियाँ तो दासता की प्रतीक हैं अब वे सम्मान की वस्तु नही रही, फिर भी अब तक इनके प्राप्त कर्त्ताओ को इन उपाधियो के नाम से ही सम्बोधित किया जाता है।

प्राय. यह भी देखा जाता है कि किसी सम्मानित पद से अवकाश ग्रहण करने वाला व्यक्ति अपने उसी पद के नाम से पुकारा जाता है। कलक्टर अवकाश ग्रहण करने पर भी कलक्टर ही कहलाता है, यद्यपि उसके पास अधिकार कलक्टरी के नही होते। जज न्याय का काम नही करता, फिर भी जज साहब ही कहलाता है, सेना के अफसर भी अवकाश ग्रहण करने पर मेजर, कप्तान, जनरल आदि अपने-अपने पदो के नाम से ही जनता मे जाने पहचाने जाते है।

जमीदारी प्रथा समाप्त हो गई। जो जमीदार राजा कहलाते थे, उन्हे अब राजा कहलाने का अधिकार प्राप्त नही है, फिर भी जनता उनको राजा साहब ही कहती है। उनके बच्चे कुवर साहब कहलाते है। अभी न जाने कब तक वे राजा साहब ही कहलायेगे और उनका घराना, राजघराना कहलाता रहेगा। इस बात को कानून बना कर रोका नही जा सकता।

यदि नरेशो की यह उपाधियाँ, सधि तोड कर, सरकारी तौर पर हटा भी दी जायें, तो इनका हटाना केवल कागजी ही रहेगा। जनता तो उन्हे उसी नाम से पुकारेगी, वैसी ही श्रद्धा रखेगी।

प्रिवीपर्स

भारत सरकार ने नरेशो के प्रिवीपर्स रियासतो के क्षेत्रीय नेताओ व शासको की सहमति से निश्चित किये थे। यह प्रिवीपर्स भारतीय अधिराज्य मे विलय होने वाली 554 रियासतो मे से केवल 284 रियासतो के लिए

निश्चित किये गये। शेष 270 छोटी छोटी रियासतों को, जो क्षेत्रफल की दृष्टि से बहुत छोटी तथा सीमित आय वाली थी, एक निश्चित धनराशि दे दी गई।

प्रिवीपर्स पाने वाले इन 284 रियासतों के नरेशों में से 179 को एक लाख रुपये से कम, 78 को एक से पांच लाख रुपये के बीच 13 को पांच से दस लाख के बीच और 11 को दसलाख रुपये से ऊपर वार्षिक प्रिवीपर्स दिया जाता है।

प्रिवीपर्सों की अदायगी के लिये भारत सरकार ने रियासतों की कुल आय का 5 से लेकर 15 प्रतिशत तक देना निश्चित किया था। किन्तु वह दस लाख रुपये वार्षिक से अधिक किसी को देना नहीं चाहती थी। रियासतों में 11 रियासतें ऐसी थी जो क्षेत्रफल में दस हजार वर्गमील से भी बड़ी थी और जिनकी आय भी बहुत अधिक थी। उन्हें 5 प्रतिशत प्रिवीपर्स भी दिया जाता तो वह बहुत अधिक बैठता था। उनके व उनके परिवार वालों के खर्चे भी बहुत अधिक थे। तब इन ग्यारह रियासतों के लिए वहां के शासकों मन्त्रियों एवं क्षेत्रीय नेताओं की राय से उनके लिये जो प्रिवीपर्स निश्चित किये गये उनके सम्बन्ध में यह रहा कि यह धनराशि इन रियासतों के केवल वर्तमान शासकों को ही मिलेगी। उत्तराधिकारी शासकों को एक के बाद दूसरे उत्तराधिकार के साथ यह क्रमशः कम होती चली जायगी।

अधिक प्रिवीपर्स पाने वाले वे ग्यारह शासक निम्नलिखित हैं —

1 हिज हाईनेस, निजाम हैदराबाद 50 लाख रुपये

2 हिज हाईनेस महाराजा बड़ौदा 26 लाख 50 हजार

3 हिज हाईनेस महाराजा मैसूर, 26 लाख

4 हिज हाईनेस महाराजा ग्वालियर, 25 लाख

5 हिज हाईनेस महाराजा ट्रावनकोर, 18 लाख

6 हिज हाईनेस महाराजा जयपुर 18 लाख

7 हिज हाईनेस, महाराजा जोधपुर 17 लाख 50 हजार

8 हिज हाईनेस महाराजा बीकानेर, 17 लाख 50 हजार

9 हिज हाईनेस महाराजा पटियाला, 17 लाख

10 हिज हाईनेस महाराजा इन्दौर, 15 लाख

11 हिज हाईनैस, नवाब भूपाल, 11 लाख

इन रियासतो के विलयन के समय—सन् 1948 मे नरेशो को प्रिवीपर्स के रूप मे दी जाने वाली कुल धनराशि पाँच करोड सत्तर लाख रुपये वार्षिक थी ।

इस समय उपरोक्त ग्यारह रियासतो के तत्कालीन शासको मे से अधो-लिखित की मृत्यु हो जाने के बाद उनके उत्तराधिकारी शासको के प्रिवीपर्स की धनराशि कम कर दी गई है —

1 हिज हाईनैस, हैदराबाद, 50 लाख से घटाकर 20 लाख

2 हिज हाईनैस, बडौदा, 26 लाख 50 हजार से घटाकर 14 लाख 54 हजार ।

3 हिज हाईनैस, ग्वालियर, 25 लाख से घटाकर 10 लाख

4 हिज हाईनैस बीकानेर, 17 लाख 50 हजार से घटाकर 10 लाख

5 हिज हाईनैस, इन्दौर, 15 लाख से घटाकर 5 लाख

6 हिज हाईनैस, भूपाल, 11 लाख से घटाकर 6 लाख 70 हजार

प्रिवीपर्स पाने वाले 279 शासको मे से भी 100 से अधिक तो जागीर-दार, ताल्लुकेदार आदि थे, उनमे कुछ तो कुछ सैकडो मे ही प्रिवीपर्स पाते है, जैसे गुजरात मे कटौदिया के राजा को, सबसे कम केवल 192 रुपये वार्षिक प्रिवीपर्स मिलता है । केवल 13 शासको को पाँच लाख रुपये से अधिक मिलता है ।

अनुबन्धो एव प्रसविदाओ के अनुसार ग्यारह बडी रियासतो के शासको को छोडकर यद्यपि प्रिवीपर्स की धनराशि न तो घटाई जा सकती है और न बढाई जा सकती है, फिर भी पाँच लाख से अधिक पाने वाले 24 नरेशो मे से 9 की मृत्यु हो जाने के बाद उनके उत्तराधिकारियो ने स्वय ही प्रिवीपर्सो की धनराशि घटाने के लिए अपनी सहमति दे दी है । यही घटी हुई धनराशि भी 81 लाख रुपये से अधिक है ।

5 रियासतो के शासको की मृत्यु के बाद उनका कोई उत्तराधिकारी न होने से प्रिवीपर्स बन्द भी हो गया है ।

इस प्रकार सन् 1948 में प्रिवीपर्स के रूप मे दी जाने वाली पाँच करोड 70 लाख की वार्षिक धनराशि 1968 मे घटकर चार करोड बयासी लाख रह गई है । इसी प्रकार यह शनै शनै कम होती चली जा रही है । और एक दिन ऐसा आयेगा कि पूरी तरह समाप्त हो जायेगी ।

यों भी भारत के 3000 करोड़ के बजट में पौने पांच करोड़ की बचत कोई महत्व नहीं रखती जबकि इस बचत के दुष्परिणाम अवश्य ही समाज पर अपना गहरा प्रभाव डालेंगे।

जहाँ तक नरेशों का प्रश्न है उनमें से अब अधिकांश परिवर्तन हो चुका है और बराबर होता जा रहा है। धीरे धीरे वे आम नागरिक जैसा जीवन अपनाते जा रहे हैं। कुछ ने निजी व्यापार आरम्भ कर दिये हैं कुछ ने उद्योगों में पैसा लगाया है और कुछ ने कृषि फार्म बना लिये हैं। इसलिये जहाँ तक इनके निजी व्यय की बात है वे किसी न किसी प्रकार अपने आपको परिस्थितियों के अनुकूल व्यवस्थित कर लेंगे।

किन्तु हमारे संविधान के अनुसार वे आज भी राजा महाराजा हैं। इसी प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिये उनके प्रिवीपर्सों का अधिकांश भाग उन हजारों लोगों पर व्यय होता है जो उनके यहाँ अब भी काम पर लगे हुए हैं और जिन्हें उन्होंने रियासतों के विलीनीकरण के उपरान्त भी सेवा निवृत्त नहीं किया। इसमें नौकर चाकर चपरासी क्लर्क और आफीसर सभी श्रेणी के लोग हैं। उनकी रियासत के सैकड़ों लोग अब भी घर बैठे पेन्शन पा रहे हैं जिनका भुगतान प्रिवीपर्सों की धनराशि में से ही होता है। प्रिवीपर्सों की समाप्ति इन सबको बेकार कर देगी। उन हजारों लोगों और उनके परिवारों का क्या होगा ? क्या भारत सरकार उनके पुनर्वास का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेगी ? प्रिवीपर्सों की इस पौने पांच करोड़ रुपयों की बचत से जो कुल बजट का $\frac{1}{600}$ भाग से कम है देश के बजट में तो कोई लाभ नहीं होगा हाँ देश में बढ़ती हुई महगाई और बेकारी के युग में हजारों परिवार अस्त व्यस्त अवश्य हो जायेंगे।

इस समय न जाने कितने ऐसे मामले हैं जिनकी ओर सरकार ध्यान दे तो करोड़ों रुपयों की आय बढ़ सकती है—

आयकर का करोड़ो रुपया छिपा लिया जाता है करोड़ों वसूल नहीं हो पाता। जीवन बीमा का राष्ट्रीयकरण हुये 11 वर्ष हो गये आज भी उसमें न जाने कितनी अनियमितता में भरी पड़ी हैं जिनको दूर करने से करोड़ो का लाभ हो सकता है। अ. ट. ओ. का भी यही हाल है।

और फिर नरेशों को दी हुई धनराशि जाती कहाँ है ?—चीन व पाकिस्तान से युद्धों के समय नरेशों ने करोड़ो रुपया राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में दिया। जब भी भारत सरकार या राज्य सरकारें जनता से ऋण लेने के लिये

'बौन्ड्स' जारी करती है. नरेश करोड़ों रुपये के 'बौन्ड्स' खरीद लेते हैं। क्या प्रिवीपर्स समाप्त हो जाने के बाद नरेशों के हृदय में इस तरह के योगदान का कोई उत्साह रह जायेगा ?

विशेषाधिकार

नरेशो के विशेषाधिकार की यद्यपि स्वाधीनता-प्राप्ति के पूर्व कोई पूर्ण सूची बनी नही थी और न ही ऐसा करना कभी श्रेय समझा गया था, किन्तु भारत सरकार ने प्रत्येक नरेश के साथ अलग अलग सविलयन प्रालेखो तथा सविलयन अनुबन्धो अथवा प्रसविदाओ पर हस्ताक्षर किए है। इसीलिए शासको के अधिकार भी अलग अलग है। एक रियासत मे कुछ है तो दूसरी मे कुछ। और इनका उपयोग भी रियासत के भीतर व बाहर दोनो ही क्षेत्रो मे किया जा सकता है। भारत सरकार के गृह मन्त्रालय से प्राप्त सूची के अनुसार उसका शीर्षक है 'इलस्ट्रेटिव आफ पर्सनल प्रिविलेजैज गारन्टिड टू रूलस आफ दि फार्मर इण्डियन स्टेट्स' (भूतपूर्व भारतीय रियासतो के शासको के प्रतिभूत व्यक्तिगत विशेपाधिकारो की निदर्शी सूची)। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित 23 विशेपाधिकार सूचीबद्ध है

1 शासको एव उनके परिवारो के लिए सरकारी अस्पतालो मे निःशुल्क चिकित्सा की व्यवस्था,

2 शासको के अधिकारी निवासो पर सशस्त्र प्रासाद-रक्षको की व्यवस्था,

3 अपेक्षित भुगतान करने पर यात्रा करते समय शासको एव उनके परिवारो को अंगरक्षक सुलभ कराने की व्यवस्था,

4 अपने निवासो, कारो तथा वायुयानो पर शासको एव उनके सहचरो को अपनी पताका फहराने का अधिकार,

5. भारतीय शस्त्र अधिनियम, 1959 के अन्तर्गत शासको एव उनके परिवारो को कुछ विशिष्ट छूटे दी गई है अर्थात् वे कुछ विशिष्ट प्रकार के शस्त्र बिना लाइसैंस के रख सकते है,

6 शासकों का प्रिवीपर्स आयकर तथा अधिकर (अतिरिक्त आयकर) दोनों करों से मुक्त रहेगा तथा उसकी गणना उनकी कुल आय एवं विश्व आय में नहीं की जाएगी

7 शासकों के अधिकारी निवासों की भाड़ा राशि पर भवन कर नहीं लगेगा

8 मोटर गाड़ी अधिनियम के अन्तर्गत शासकों को बिना शुल्क लिए अपनी कारें रजिस्टर कराने तथा अपने लिए ड्राइवर लाइसेंस लेने का अधिकार होगा

9 स्थानीय कराधान से शासकों को प्रमुक्ति (छूट) देने का निर्णय सम्बन्धित प्रदेशों की सरकारें करेंगी जहाँ तक होगा वहाँ तक 15 अगस्त 1947 के पहले की स्थिति को चालू रखने का प्रयत्न किया जायेगा । प्रदेश सरकारों को यह निर्देश दे दिया गया है कि यदि भूतपूर्व रियासतों के क्षेत्रों में भवन कर लगाया जाय तो शासकों के निवासों को इससे मुक्त रखा जाए ।

10 शासकों की जागीरों तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति को करों से मुक्त रखने या न रखने का निर्णय सम्बन्धित प्रदेश सरकारें करेंगी। भारत सरकार ने इस सम्बन्ध में यह इच्छा भी व्यक्त कर दी है कि सामान्यतः ऐसे मामलों को भू राजस्व अधिनियम के अधीन सुलझाया जाए

11 शासकों का अग्र सम्मानाधिकार 15 अगस्त 1947 के पहले के समान रहेगा

12 शासकों को अपनी कारों पर लाल नम्बर प्लेटें लगाने का अधिकार होगा

13 दस या दस से अधिक तोपों की सलामी पाने वाले शासकों के साथ आने या जाने वाला सामान तथा उन्नीस या उन्नीस से अधिक तोपों की सलामी पाने वाले शासकों के साथ या अलग से आने या जाने वाला सामान आयात निर्यात कर से मुक्त होगा । उन्नीस या उन्नीस से अधिक तोपों की सलामी पाने वाले शासकों तथा उनके पारिवारिक सदस्यों के व्यक्तिगत उपयोग के लिए ली गई चीजों पर भी आयात निर्यात-कर नहीं लगेगा । उन्नीस

या उन्नीस से अधिक तोपो की सलामी पाने वाले शासको द्वारा खरीदे गए पेट्रोल पर दिया जाने वाला उत्पादन शुल्क उन्हे वापस कर दिया जाएगा ,

14 किसी शासक के विरुद्ध मुकद्दमा चलाने से पहले भारत सरकार की अनुमति लेना अनिवार्य होगा,

15. शासको को उनकी मान्यता-प्राप्त उपाधियो से सम्बोधित किया जाएगा ,

16 शासको के मछली पकडने तथा शिकार करने के अधिकार सुरक्षित रहेगे ,

17 सविलयन के पूर्व जो शासक भारतीय सेना की टुकडिया रखते थे, उनके या उनके सहचरो के या उनके युवराजो के अन्तिम सस्कार के समय उन्हे सैनिक सम्मान मिलेगा, बशर्ते कि इसका वहाँ तुरन्त प्रबन्ध हो सके ,

18 शासको की सहमति लिए विना तथा बिना उनको उचित क्षतिपूर्ति दिये, उनके निवास के लिए उपयुक्त होने वाली उनकी भू-सम्पत्ति को न अधिग्रहीत किया जाएगा और न अभिग्रहीत,

19 शासको से उनकी भूतपूर्व रियासतो मे स्थित हवाई अड्डो पर उनके हवाई जहाज उतारने का कोई शुल्क नही लिया जायेगा,

20. शासको की भूतपूर्व रियासतो मे स्थित उनके निवासो मे खर्च होने वाली विजली एव पानी का मूल्य नही लिया जाएगा। यह छूट केवल कुछ शासको को ही मिलेगी ,

21 भूमि के अनिवार्य अभिग्रहण से प्रमुक्ति। यह प्रमुक्ति केवल कुछ शासको को ही है,

22 भूतपूर्व रियासती क्षेत्रो मे शासको के जन्म-दिवस पर सार्वजनिक छुट्टी। यह अधिकार भी केवल कुछ विशिष्ट शासको को ही प्राप्त होगा , तथा

23 कुछ विशिष्ट शासको को (यह वर्गीकरण तोपो की सलामी पर आधारित है) डाक-तार की विशिष्ट सुविधाएँ जैसे नि शुल्क रेडियो-लाइसैंस तथा तार देते समय प्राथमिकता मिलेगी।

इन विशेपाधिकारो की जितनी चर्चा हो रही है, यदि इन्हे व्यवहार की

कसौटी पर कस कर देखा जाए तो इनमे ऐसा कुछ भी नही है, जिस इतना तूल दिया जाना जरूरी हो। इस संदर्भ म इन विशेषाधिकारो के स्वरूप पर चर्चा करना असम्बद्ध न होगा। देखिये —

1 सरकारी अस्पताला मे नि शुल्क चिकित्सा—देश के प्रत्येक नागरिक को यह सुविधा प्राप्त है और भूतपूर्व नरेश भी देश के नागरिक है। तब इसमे 'विशेषाधिकार' कहाँ से घुस गया ? दूसरे ऐसा कौन नरेश होगा जो इलाज क चक्कर म अस्पतालो क चक्कर काटता फिरेगा।

2 अधिकारी निवास पर सशस्त्र रक्षक यह सुविधा भी प्रत्येक नागरिक को है। यदि किसी नागरिक को अपनी जान माल का खतरा महसूस होता हो तो वह नगर अधिकारियो मे प्रार्थना करके अपने निवास पर सशस्त्र रक्षक तनात करा सकता है।

3 यात्रा के समय अगरक्षक इस सुविधा को प्राप्त करने के लिए नरेशो को भुगतान करना पडता है। जब भुगतान ही करना है तब सर कारी अगरक्षक क्या और गर सरकारी क्या ?

4 यह सुविधा भी प्रत्येक नागरिक को प्राप्त है। आपको यह स्वतन्त्रता है कि आप राष्ट्रीय ध्वज अर्थात तिरंगे झण्डे के अतिरिक्त किसी भी प्रकार का झण्डा अपने निवास पर फहराए अपनी कार पर फहराए और यदि वायुयान हो तो उस पर भी फहराए। 15 अगस्त के दिन आप राष्ट्रीय ध्वज भी फहरा सकते हैं। फिर इसम नरेशो को कौन सा विशेषाधिकार प्रदान किया गया है।

5 कुछ विशिष्ट प्रकार के शस्त्र बिना लाइसस के रखने का अधिकार अवश्य विशेष है, पर लाइसस प्राप्त करके शस्त्र कोई भी रख सकता है।

6 आयकर एव अधिकार स मुक्ति केवल प्रिवीपर्स के रूप म प्राप्त राशि पर है। नरेशो की शेष आय पर (यदि कुछ है तो) नही।

7 कोई विशेष राशि नही बनती।

8 नरेशो को मोटर गाडी अधिनियम की समस्त धाराओं का पालन तो एक सामान्य नागरिक के समान ही करना है केवल कार रजिस्टर कराने या अपना ड्राइविंग लाइसस लेने की फीस नही देनी होगी। अर्थात् कुछ थोडे-से रुपयों की बचत है केवल।

9. स्थानीय कराधान से नरेशो को छूट देना या न देना सम्बन्धित प्रदेश सरकारो की इच्छा पर निर्भर करता है। यह नरेशो का अधिकार नही है। हाँ, उनके मुख्य आवास को हाउस-टैक्स से मुक्त करना जरूर एक सुविधा है। किन्तु यह भी आर्थिक लाभ है और वह भी कोई बहुत अधिक नही है।

10. जागीर एव व्यक्तिगत सम्पत्ति को करो से मुक्त करना या न करना प्रादेशिक सरकारो की इच्छा पर निर्भर है। नरेशो का अधिकार यह भी नही है। और भू-राजस्व अधिनियम तो फिर भी लागू है ही।

11 यह विशेषाधिकार केवल नाम का है। व्यवहार मे इसका मूल्य नही है। आज उन नरेशो के लिए जिन्होने अपना सब कुछ राष्ट्र की एकता के लिए त्याग दिया है, किसी अग्र-सम्मान की व्यवस्था नही है। सिक्किम, भूटान आदि भी तो रियासते ही है। यदि आज इनके नरेश दिल्ली पधारते हे तो भारत के राष्ट्रपति उनके स्वागत के लिए पालम हवाई अड्डे पर पहुँचते हैं किन्तु, यदि भारत की भूतपूर्व रियासतो के नरेश नयी दिल्ली आते है तो उनका किसी को पता भी नही चलता। उनका दोष केवल इतना है कि उन्होने अपनी रियासतो को भारत सघ मे विलीन करके अपना प्रथक अस्तित्व समाप्त कर दिया है।

12. कार पर लाल नम्बर प्लेट लगाने से क्या अन्तर पड़ता है! और सब नरेश लाल प्लेट लगाते कहाँ है? यदि कभी अपनी भूतपूर्व रियासतो मे जाते हैं तो भले ही इस अधिकार का उपयोग कर लेते हो।

13. इस कोटि मे बहुत कम नरेश आते है। उन्नीस तोपो की सलामी लेने वाले नरेश केवल 6 है और इसके ऊपर 21 तोपो की सलामी लेने वाले केवल 5। दस तोपो से ऊपर वालो की भी कोई अधिक सख्या नही है।

14 यह कोई विशेषाधिकार नही है; बल्कि नरेशो को व्यर्थ के झमेलो से बचाने का उपाय मात्र है। नरेशो पर मुकद्दमा तो हर तरह का चलाया जा सकता है और कोई भी चला सकता है। शर्त केवल इतनी है कि उसके लिए केन्द्रीय सरकार से पहले अनुमति लेनी

होगी। यदि मामला उचित है और नरेश पर मुकद्दमा चलाना न्यायसगत है तो भारत सरकार उसकी तुरन्त अनुमति देती है और अतीत म देती भी रही है। इसलिए इस विशेषाधिकार का यह अथ नही है कि नरेशो पर मुकद्दमा नही चलाया जा सकता बल्कि इसका अथ यह है कि उन्हे व्यथ म कोई झूठा मुकद्दमा चला कर परेशान न करे।

15 सिख सज्जन को 'सरदारजी', ब्राह्मण बधु को 'पडितजी' तथा मस्जिद के अधिष्ठाता को 'मौलवी' कह कर सम्बोधन करते हैं उसी प्रकार नरेश मण्डल के सदस्य को 'महाराज' कह कर सम्बोधन करते हैं। इसमे विशेषाधिकार के दशन तो कही दशन नही हुए।

16 आजकल नरेशो के पास इतना समय कहाँ है कि वे मछली पकड़ने या शिकार खेलने म व्यस्त रहे। यह भी केवल कागज पर लिखा विशेषाधिकार है।

17 प्रथम तो यह अधिकार सब नरेशो को प्राप्त नही है। दूसरे यदि उस समय व्यवस्था हो तो यह सम्मान दिया जा सकता है। यह विशेषाधिकार कहाँ रहा। यह तो उस क्षेत्र के सरकारी अधिकारियो की इच्छा पर निभर है। यदि उन अधिकारियो को सुविधा प्रतीत होगी तो वह अतिम सस्कार के समय सनिक सम्मान की व्यवस्था कर देगे

18 यह कोई विशेषाधिकार नही है। एक सामान्य नागरिक की जमीन को भी बिना उसकी सहमति लिए और बिना उसे मुआवजा दिये सरकार नही ले सकती जब तक कि उसकी आवश्यकता किसी सावजनिक काय के लिए न हो। और बने हुए मकान आदि को सावजनिक काय के लिए भी नही लिया जा सकता। नागरिक होने के नाते नरेशो को भी यह अधिकार प्राप्त है।

19 यह विशेषाधिकार केवल कागज की शोभा बढाने के लिए है। आज किसी नरेश के पास वायुयान है ही नही, फिर उसके उतारने का प्रश्न ही नही पदा होता।

20 निवास के लिए मुफ्त बिजली पानी कोई विशेषाधिकार नहीं है। सरकार के मन्त्रीगण एव वरिष्ठ अधिकारियो को भी यह सुविधा प्राप्त है और नरेशो की तुलना म अधिक प्राप्त है।

21 यह अधिकार भी सब नरेशो को प्राप्त नही है।

22 पहली बात तो यह कि यह विशेपाधिकार सब नरेशो को प्राप्त नही है और दूसरी बात यह है कि किसी नरेश के जन्मदिन पर किसी रियासती क्षेत्र मे छुट्टी होती ही नही इसलिए यह भी केवल कागजी विशेपाधिकार है।

23 पहली बात तो यह विशेपाधिकार सब नरेशो को प्राप्त नही है तथा दूसरी बात यह है कि आज यह सुविधा सब मन्त्रियो को प्राप्त है और ससत्सदस्यो को प्राप्त होने जा रही है।

इस तरह हम देखते है कि नरेशो के यह विशेपाधिकार केवल नाम के ही है। वह उन्हे कोई ऐसी बडी उपलब्धि नही कराते जो उनके त्याग को देखते हुए बहुत अधिक महत्वपूर्ण मानी जा सके। जिन्होने अपना सब कुछ देश के चरणो मे अर्पण कर दिया, वह भी तब जब आत्मनिर्णय की पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त थी।

———

प्रिवीपर्स एव विशेषाधिकारों का औचित्य

(अ) कानूनी पक्ष

भारतीय सविधान की दृष्टि मे

भारतीय सविधान की जिन धाराओ का शासको के प्रिवीपर्स, व्यक्तिगत अधिकारो तथा विशेषाधिकारो से सम्बन्ध है व है धारा 291, धारा 362 धारा 363 तथा धारा 366 (खण्ड 15 एव 22)। तुरन्त सन्दर्भ के लिए वे धाराए यहाँ उद्धृत हैं

'291. शासको के प्रिवीपर्स की राशि—सविधान के लागू होने के पहले किसी भी भारतीय रियासत के शासक के साथ जो भी अनुबन्ध या प्रसविदा हुआ है और उसके अन्तर्गत भारतीय अधिराज्य की सरकार ने उस शासक को जो भी प्रिवीपर्स देने की गारण्टी दी है—

(अ) उसकी राशि भारत की समेकित निधि से दी जायेगी और

(आ) शासक को दी जाने वाली यह राशि सब प्रकार के आयकर से मुक्त होगी।

362 भारतीय रियासतो के शासको के अधिकार एव विशेषाधिकार—देश की ससद् या प्रदेश की विधान सभा द्वारा विधान बनाते समय तथा

केन्द्रीय या प्रादेशिक कार्यांग द्वारा उस विधान को लागू करते समय भारतीय रियासत के शासक के व्यक्तिगत अधिकारो, विशेषाधिकारो तथा उपाधि-सम्मान का पूरा ध्यान रखा जाएगा, जिसकी कि धारा 291 मे उल्लिखित प्रसविदा या अनुबन्ध मे गारण्टी दी गई है।"

"363 विशिष्ट सन्धियों, अनुबन्धो आदि से सम्बन्धित विवादो मे न्यायालयो द्वारा हस्तक्षेप किए जाने पर प्रतिबन्ध—

(1) इस सविधान मे किसी व्यवस्था के न होने पर किन्तु धारा 143 की व्यवस्थाओ के अधीन, सर्वोच्च न्यायालय या किसी अन्य न्यायालय को यह अधिकार नही है कि वह इस सविधान के लागू होने के पहले हुए किसी भी भारतीय रियासत के शासक और भारतीय अधिराज्य की सरकार या उसकी पूर्वाधिकारी सरकार के बीच सन्धि, अनुबन्ध, प्रसविदा, समझौता, सदन या इसी कोटि के किसी अन्य प्रालेख की किसी व्यवस्था के सम्बन्धित किसी विवाद के उठ खडे होने पर (अथवा) किसी ऐसी सन्धि, अनुबन्ध, प्रसविदा, समझौता सनद या इसी कोटि के किसी अन्य प्रालेख से सम्बन्धित इस सविधान की किसी व्यवस्था के विषय मे किसी विवाद के उठ खडे होने पर, किसी प्रकार का हस्तक्षेप कर सके।

(2) इस धारा मे—

(अ) 'भारतीय रियासत' से अभिप्राय है वह कोई भी प्रदेश, जिसे इस सविधान के लागू होने के पहले इग्लैंड के बादशाह द्वारा या भारतीय अधिराज्य की सरकार द्वारा रियासत स्वीकार किया गया हो, तथा—

(आ) 'शासक' से अभिप्राय है राजा-महाराजा, सरदार या वह व्यक्ति, जिसे इस सविधान के लागू होने के पहले इग्लैण्ड के बादशाह ने या भारतीय अधिराज्य की सरकार ने किसी भारतीय रियासत का शासक माना हो।

"366 परिभाषाएँ—इस सविधान मे, जब तक कि सन्दर्भ मे दूसरा अर्थ न लगता हो, निम्नलिखित अभिव्यक्तियो को इस अर्थ मे प्रयुक्त किया गया है—

° ° °

(15) 'भारतीय रियासत' से अभिप्राय उस प्रदेश से है, जिसे भारतीय अधिराज्य की सरकार ने मान्यता प्रदान की हो,

° ° °

अन्तर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि मे

यह तथ्य निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुका है कि भारतीय रियासत पूर्णत स्वत त्र तथा सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्प न थी और यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता था कि व भारत या पाकिस्तान किसी एक अधिराज्य म मिल जाएँ अथवा अपनी स्वत त्र सत्ता बनाए रख। सत्य यह है कि शुरू म कुछ रियासतो ने स्वत त्र रहने की इच्छा भी व्यक्त की थी। कि तु सरदार वल्लभभाई पटेल और उनक सुयोग्य सचिव श्री वी० पी० मनन की कुशल वार्ता के फलस्वरूप 554 रियासतो ने भारत म मिलने का निश्चय किया तथा बाद मे सविलयन अनुब धो तथा प्रसविदाओ पर हस्ताक्षर हुए। जसा कि सरदार पटेल ने सविधान सभा मे वक्त य दत हुए कहा था कि प्रिवीपस एव विशेषाधिकार तो शासको के सत्ता त्याग एव अपनी रियासतो को भारत म मिलाने का क्षति पूर्ति रूप मे दिये गए है। सविलयन विषयक समस्त समझौते दो स्वत त्र एव सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्प न राज्यो भारत अधिराज्य एव भारतीय रियासत— मे हुए है इसलिए अ तर्राष्ट्रीय कानून के अ तगत भारत सरकार इस बात क लिए बाध्य है कि वह समझौते की शर्तो का पूर्णरूपेण पालन करे। यह कसे सम्भव है कि भारत सरकार सविलयन का लाभ तो उठाती रह और अपनी जिम्मेदारी से मुकर जाए? प्रिवी पस देने एव विशेषाधिकारो क सम्ब ध मे भारत सरकार की एकतरफा अस्वीकृत अ तर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि मे अपनी प्रतिज्ञा का नि दनीय उल्लघन है।

इस विश्वासघात का क्षमा करने के लिए तनिक सा भी कारण नही है। गत बीस वर्षो म एक भी घटना ऐसी नही घटी जिसक बल पर इस प्रतिज्ञा भग को उचित ठहराया जा सके। उदाहरण के लिए यदि कोई शासक षडय त्र करता पाया जाता या उसकी रियासत का मत्र सम यवहार करन के बाद बलपूवक भारत अधिराज्य म मिलाया जाता और भारत सरकार उस विशिष्ट शासक को प्रिवी पस देने से या उसक विशेषाधिकारो को मानने से मना करती तो उसके इस कदम को न्यायसगत माना जा सकता था। कि तु एक अ तर्राष्ट्रीय सधि की एकतरफा अस्वीकृति क लिए केवल सत्तारूढ़ दल या राजनीतिज्ञो के नित्य परिवर्तित पक्षा और नीतियो का पर्याप्त नही माना जा सकता। यदि एसा होता है तो अ तर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञाओं का मूल्य कागज क टुकडो से अधिक नहीं है।

सविलयन प्रालेख और सविलयन अनुवन्ध अथवा प्रसविदा परस्पर सूत्रवद्ध है और ये एक ही ऐतिहासिक एव सांविधानिक प्रसग के सोपान हैं। इनका पृथक्-पृथक् कोई अस्तित्व नहीं है अपितु ये तो एक ही शृ खला की कडियाँ है। इसलिए, सविलयन प्रालेख और प्रिवीपर्स एव विशेषाधिकारो की गारण्टी देने वाले सविलयन अनुवन्ध या प्रसविदा को पृथक् करना सम्भव नही है।

यह सर्वस्वीकृत तथ्य है कि दो सम्पूर्ण-प्रभुत्व सम्पन्न राज्यो के मध्य हुए किसी समझौते से सम्वन्धित किसी विवाद के उठ खडे होने पर केवल उस सन्धि की धाराओ का अध्ययन-विश्लेपण ही पर्याप्त नही है अपितु उस सन्धि की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सन्धि के समय हुई वार्ताएँ, विचार-विमर्श, वाद-विवाद एव घोपणाएँ आदि भी महत्त्वपूर्ण है। साथ ही इस सन्धि विशेष की ऐतिहासिक शृ खला से सम्वन्धित पुराने कागजात भी समान रूप से महत्त्व-पूर्ण है। ऑपेनहेम के ग्रन्थ 'अन्तर्राष्ट्रीय कानून' (8वाँ सस्करण) से निम्न-लिखित अवतरण महत्त्वपूर्ण है

> "यदि सन्धि की किसी धारा का अर्थ भ्रामक है तो उस सम्पूर्ण सन्धि पर विचार करना चाहिए। ऐसा करते समय सन्धि के केवल शब्दो पर ही ध्यान नहीं देना है वल्कि उसके उद्देश्य तथा उसके किये जाने के समय की परिस्थितियो पर भी ध्यान देना चाहिए।' —पृष्ठ 953

> "अन्तर्राष्ट्रीय ट्रिव्यूनलो मे सुसस्थापित नियम है कि किसी सन्धि की विवादास्पद धारा की व्याख्या करते समय वे अपने सामने सन्धि के होने से पहले की वार्ताओ का रिकार्ड, तत्सम्वन्धी समितियो की वैठको की वातचीत तथा सन्धि के अन्तिम प्रारूप तक पहुचने के पहले के प्रारूप आदि को रख लेते है तथा उनका अध्ययन-विश्लेपण करते है।"
> —पृष्ठ 957

> 'सन्धि होने के पूर्व उससे सम्वन्धित जितनी वातचीत हुई है, जितना भी विचार-विमर्श हुआ है तथा जितना भी प्रचार हुआ है, उस सव का रिकार्ड इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण साक्ष्य है।" —पृष्ठ 958

प्रदेश (भू क्षेत्र) के स्वत्व-त्याग से सम्वन्धित निम्नलिखित अनुच्छेद भी इसी ग्रथ मे सुलभ है :

> "स्वत्व-त्याग का लक्ष्य है किसी ऐसे प्रदेश पर प्रभुत्व पाना जो अव तक किसी अन्य राज्य की सीमा मे था। जहाँ तक अन्तर्राष्ट्रीय कानून का

अन्तर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि में

यह तथ्य निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुका है कि भारतीय रियासतें पूर्णत स्वत त्र तथा सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्प न थी और यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता था कि वे भारत या पाकिस्तान, किसी एक अधिराज्य म मिल जाएँ अथवा अपनी स्वत त्र सत्ता बनाए रख। सत्य यह है कि शुरू म कुछ रियासतों ने स्वत त्र रहने की इच्छा भी व्यक्त की थी। किन्तु सरदार वल्लभभाई पटेल और उनके सुयोग्य सचिव श्री वी० पी० मेनन की कुशल वार्ता के फलस्वरूप 554 रियासतों ने भारत म मिलने का निश्चय किया तथा बाद मे सविलयन अनुबन्धों तथा प्रसंविदाओं पर हस्ताक्षर हुए। जैसा कि सरदार पटेल ने संविधान सभा म वक्त य देते हुए कहा था कि प्रिवीपर्स एव विशेषाधिकार तो शासकों के सत्ता त्याग एव अपनी रियासतों को भारत म मिलाने की क्षति पूर्ति रूप मे दिये गए हैं। सविलयन विषयक समस्त समझौते दो स्वत त्र एव सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्प न राज्यों भारत अधिराज्य एव भारतीय रियासतों मे हुए हैं, इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अ तर्गत भारत सरकार इस बात के लिए बाध्य है कि वह समझौते की शर्तों का पूर्णरूपेण पालन करे। यह कैसे सम्भव है कि भारत सरकार सविलयन का लाभ तो उठाती रहे और अपनी जिम्मेदारी से मुकर जाए? प्रिवी पर्स दन एव विशेषाधिकारों क सम्ब ध मे भारत सरकार की एकतरफा अस्वीकृति अ तर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि म अपनी प्रतिज्ञा का निन्दनीय उल्लघन है।

इस विश्वासघात को क्षमा करने के लिए तनिक सा भी कारण नहीं है। गत बीस वर्षों म एक भी घटना ऐसी नहीं घटी जिसके बल पर इस प्रतिज्ञा भंग को उचित ठहराया जा सके। उदाहरण के लिए यदि कोई शासक षड्य त्र करता पाया जाता या उसकी रियासत को शत्रु सम व्यवहार करने के बाद बलपूर्वक भारत अधिराज्य मे मिलाया जाता और भारत सरकार उस विशिष्ट शासक को प्रिवी पर्स देने से या उसके विशेषाधिकारों को मानने मे मना करती तो उसके इस कदम को न्यायसगत माना जा सकता था। किन्तु एक अ तर्राष्ट्रीय संधि की एकतरफा अस्वीकृति क लिए केवल सत्तारूढ़ दल या राजनीतिज्ञों के नित्य परिवर्तित पक्षों और नीतियों का पर्याप्त नहीं माना जा सकता। यदि ऐसा होता है तो अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञाओं का मूल्य कागज के टुकड़ों से अधिक नहीं है।

सविलयन प्रालेख और सविलयन अनुबन्ध अथवा प्रसविदा परस्पर सूत्रबद्ध है और ये एक ही ऐतिहासिक एव सांविधानिक प्रसग के सोपान है। इनका पृथक्-पृथक् कोई अस्तित्व नहीं है अपितु ये तो एक ही शृ खला की कड़ियाँ है। इसलिए, सविलयन प्रालेख और प्रिवीपर्स एव विशेषाधिकारो की गारण्टी देने वाले सविलयन अनुबन्ध या प्रसविदा को पृथक् करना सम्भव नही है।

यह सर्वस्वीकृत तथ्य है कि दो सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न राज्यो के मध्य हुए किसी समझौते से सम्वन्धित किसी विवाद के उठ खडे होने पर केवल उस सन्धि की धाराओ का अध्ययन-विश्लेषण ही पर्याप्त नही है अपितु उस सन्धि की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सन्धि के समय हुई वार्ताएँ, विचार-विमर्श, वाद-विवाद एव घोषणाएँ आदि भी महत्त्वपूर्ण है। साथ ही इस सन्धि विशेष की ऐतिहासिक शृ खला से सम्बन्धित पुराने कागजात भी समान रूप से महत्त्व-पूर्ण है। ऑपेनहेम के ग्रन्थ 'अन्तर्राष्ट्रीय कानून' (8वाँ सस्करण) से निम्न-लिखित अवतरण महत्त्वपूर्ण है .

"यदि सन्धि की किसी धारा का अर्थ भ्रामक है तो उस सम्पूर्ण सन्धि पर विचार करना चाहिए। ऐसा करते समय सन्धि के केवल शब्दो पर ही ध्यान नही देना है बल्कि उसके उद्देश्य तथा उसके किये जाने के समय की परिस्थितियो पर भी ध्यान देना चाहिए।" —पृष्ठ 953

"अन्तर्राष्ट्रीय ट्रिब्यूनलो में सुसस्थापित नियम है कि किसी सन्धि की विवादास्पद धारा की व्याख्या करते समय वे अपने सामने सन्धि के होने मे पहले की वार्ताओ का रिकार्ड, तत्सम्बन्धी समितियो की बैठको की बातचीत तथा सधि के अन्तिम प्रारूप तक पहुचने के पहले के प्रारूप आदि को रख लेते है तथा उनका अध्ययन-विश्लेषण करते है।"

—पृष्ठ 957

'सन्धि होने के पूर्व उससे सम्वन्धित जितनी बातचीत हुई है, जितना भी विचार-विमर्श हुआ है तथा जितना भी प्रचार हुआ है, उस सब का रिकार्ड इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण साक्ष्य है।" —पृष्ठ 958

प्रदेश (भू क्षेत्र) के स्वत्व-त्याग से सम्वन्धित निम्नलिखित अनुच्छेद भी इसी ग्रथ मे सुलभ है :

"स्वत्व-त्याग का लक्ष्य है किसी ऐसे प्रदेश पर प्रभुत्व पाना जो अब तक किसी अन्य राज्य की सीमा मे था। जहाँ तक अन्तर्राष्ट्रीय कानून का

सम्बन्ध है, प्रत्येक राज्य को अपने क्षेत्र के किसी प्रदेश के स्वत्वत्याग का अधिकार है, और यदि वह चाहे तो उसे दूसरे राज्य में पूर्णरूपेण विलय हो जाने का भी अधिकार है।" —पृष्ठ 548

स्वत्व त्याग को प्रभावोत्पादक बनाने का एक ही रूप है कि अपराकर्ता राज्य एवं अभिग्राही राज्य के बीच एक संधि हो जिसमें यह समझौता लिखित हो। यह संधि शान्तिपूर्ण वार्ता का फल भी हो सकती है और युद्ध का भी तथा स्वत्व त्याग क्षतिपूर्ति के बदले में भी हो सकता है और बिना क्षतिपूर्ति के भी। —पृष्ठ 548

वर्तमान प्रसंग में भारतीय रियासतों के स्वत्व त्याग की क्षतिपूर्ति प्रिवी पर्सों के रूप में की गई। क्या एक सरकार को जिसने एक सुनिश्चित क्षतिपूर्ति की गारण्टी देकर दूसरी सरकार के प्रदेश के स्वत्व-त्याग को प्राप्त किया है यह कहने का अधिकार है कि अब वह अपने वचन का पालन करना नहीं चाहती ?

संविधान की धारा 291 जिस पर पिछले अध्याय में विचार किया गया है, प्रिवी पर्स प्राप्त करने के शासकों के अधिकार को पूर्ववर्ती मानता है। दूसरे शब्दों में प्रिवी पर्स न केवल अन्तर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि से ही संगत हैं अपितु उन्हें सांविधानिक गारण्टी भी प्राप्त है। इसी प्रकार, शासकों के व्यक्तिगत अधिकारों एवं विशेषाधिकारों को भी संविधान की धारा 362 में मान्यता दी गई है तथा संविलयन अनुबन्धों या प्रसंविदाओं में उनकी गारण्टी की गई है इसलिए बिना अन्तर्राष्ट्रीय कानून का उल्लंघन किए उनको भी समाप्त नहीं किया जा सकता।

यदि भारत सरकार शासकों को दिये गए अपने वचन को भंग करती है और भारतीय न्यायालय इस अन्याय को रोकने में असमर्थ सिद्ध होते हैं तो इस बात में तो कोई शंका है ही नहीं कि भारत सरकार का यह प्रतिज्ञा भंग करना सार्वजनिक अन्तर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि से तो अनुचित एवं अन्यायपूर्ण है ही।

संविधान की धारा 51 में उल्लिखित राज्यनीति के निदेशक सिद्धान्तों में एक यह है "सुव्यवस्थित लोगों के साथ व्यवहार करते हुए राज्य अन्तर्राष्ट्रीय कानून एवं की गई संधि की शर्तों का सम्मान करेगा।" प्रिवी पर्स समाप्त करने का फतवा देने वालों को शायद यह धारा भूल गई है।

ध्यान देने की बात यह है कि लोकतन्त्र भारत का 47 प्रतिशत क्षेत्रफल भारतीय रियासतो की देन है। साथ ही यह तथ्य भी कम महत्त्वपूर्ण नही है कि कुछ रियासतो—कश्मीर, कच्छ, त्रिपुरा—की सीमा भारत के सीमान्त का काम करती है। कश्मीर एव कच्छ के रण के सम्बन्ध मे पाकिस्तान के साथ चल रहे विवाद पर भारत के पक्ष मे केवल यही तर्क है कि इन दोनो रियासतो के शासको ने सविलयन प्रालेख पर हस्ताक्षर करके भारत मे अपनी रियासतो का सविलय स्वीकार किया है और कच्छ के शासक ने सविलयन अनुबन्ध पर भी हस्ताक्षर किये हैं। एक ओर तो भारत की क्षेत्रीय अखण्डता केवल सविलयन प्रालेखो एव अनुबन्धो या प्रसवदाओ पर निर्भर करती है और भारत सरकार उनका इस दृष्टि से सम्पूर्ण लाभ उठाती है; दूसरी ओर उन्हीं अनुबन्धो या प्रसंविदाओ को एकतरफा खत्म करना चाहती है। इस प्रकार के सन्धि-उल्लघन से सीमा-पार ताक मे लगे हमारे शत्रुओ को हमारे विरुद्ध प्रचार-सामग्री मिलती है और वे आज की विपम परिस्थिति मे हमारे लिए अनेक नयी समस्याएँ खडी कर सकते है।

नैतिक पक्ष

यद्यपि, भारतीय रियासतो और उनके शासको के विपय मे, ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत मे भेजे गये मत्रि—मडलीय शिष्ट मडल के 12 मई 1946 के घोपित ज्ञापन से लेकर 3 जुलाई 1968 को केन्द्रीय मंत्रिमडल की आन्तरिक मामलो की समिति के निर्णय तक का इतिहास निष्पक्ष रूप से अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि भारत सरकार नरेशो की शाति प्रियता का अनुचित लाभ उठाना चाहती है। फिर भी एक प्रश्न बडा महत्व पूर्ण है —क्या भारत सरकार का यह पग केवल कानून की दृष्टि से ही अनुचित है या इसका कोई नैतिक मूल्य भी है ?

वास्तव मे किसी भी कानून का ध्येय समाज का नैतिक स्तर बनाये रखना ही होता है—समाज का कोई अग (व्यक्ति या समूह) किसी दूसरे अग के अधिकारो का हनन न कर सके। समाज कुछ विशेप नियमो का पालन करता हुआ एक अनुशासन मे चलता रहे

हमारी संविधान सभा ने भी नरेशों के प्रिवी पर्स एवं विशेषाधिकारों को उनका अधिकार माना है इसीलिए उसने धारा 291, 362 व 363 को संवधानिक रूप देकर उन अधिकारों को सुरक्षित किया है।

सरकार भी समाज का एक अंग ही होती है संविधान में केन्द्रीय सरकार और प्रान्तिक सरकारों पर यह अंकुश लगाया गया है कि वे नागरिकों को उनके अधिकारों से वंचित न कर सकें।

कानून की व्यवस्था तो उन लोगों के लिए होती है जो नैतिकता का मूल्य नहीं जानते। हमारी संस्कृति में वचन देकर उसका पालन करना नैतिकता का अभिन्न अंग है। इस विषय में हम अपने देश के साधारण से साधारण एवं अशिक्षित व्यक्तियों तक में इस प्रकार की वार्तायें नित्य सुनते हैं —

'भइया! जबान से तो बेटा बेटी पराये हुइ जात हैं मैंने जबान दई है तो मैं अपने धरम नाहिं हारेंगो।

यह है आदर्श हमारे जीवन दर्शन का हमारी संस्कृति का!

इसी लिये हमारी संविधान सभा भारतीय संविधान का प्रारूप तैयार करते समय इस नैतिकता से अनुप्राणित थी जिसको सभा के माननीय सदस्यों ने अपने वक्तव्यों में स्पष्ट भी किया है —

स्वाधीनता मिलने के समय जो व्यक्ति सरकारी सेवा में पहले से ही थे उन सरकारी कर्मचारियों को आश्वासन देने के लिए संविधान सभा के सभी सदस्यों ने एक एक करके खड़े होकर इस बात पर अपनी सहमति प्रकट की कि 'हमारे नेताओं द्वारा दी गई गारण्टियों को राष्ट्र हर कीमत पर पूरा करे। (देखिए संविधान सभा की बहस 10 अक्तूबर 1949 भाग 10 संख्या 3, पृष्ठ 38)

डाक्टर पी० एस० देशमुख का तो भारतीय संस्कृति और उसकी परम्पराओं पर इतना अगाध विश्वास था कि उन्होंने संविधान में किसी प्रकार की गारंटी को लिखना ही व्यर्थ समझते हुए कहा —

यदि गारण्टी है यदि हमने वचन दिया है, तो हमारा वह वचन ही न केवल पौर-अधिसेवा एवं अन्य प्रतिश्रुत सेवाओं के लिए अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए पर्याप्त है। यदि हम अपने वचन का मूल्य नहीं जानते तब उसे संविधान की धारा के रूप में लिखने से न राष्ट्र को कोई लाभ है और न पौर अधिसेवा को।' (वही पृष्ठ 40)

भारतीय परम्परा मे दिये गए वचनो का कितना वडा नैतिक मूल्य है, इस बात को स्पष्ट करने के लिए, इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है ?

इसी विपय पर उसी दिन 10 अक्तूबर 1949 को सविधान सभा मे श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने कहा, "उस राष्ट्र का जो प्राणमूलक सिद्धान्तो को भूल चुका है, जो अपने दिये वचन को पूरा नही करता, राजनीति मे कोई भविष्य नही है मुझे यह नही मालूम कि भारत की भावी ससद मे किस प्रकार के लोग आएँगे। किसी अतिवाद के जोश मे या किसी पराकाष्ठावादी विचार धारा की वेदी पर, वे इन व्यवस्थाओ को समाप्त कर देना चाहे जिन्हे कि हमने इस सविधान की धाराओ मे बाँधा है हमारे नेताओ ने कुछ वायदे किए है। हम उनका समर्थन करते है हम प्रभुत्व-सम्पन्न है, भावी ससद नही। कार्याग, न्यायाग अथवा ससद् के विवेक पर हम अकुश लगा सकते है। यही वह उद्देश्य है जिसके लिए हम सविधान का प्रारूप तैयार कर रहे हैं।

"सदन को सर्वसम्मति से इस धारा (प्रतिश्रुत अधिकारियो की सेवा-विपयक विशिष्ट शर्तो की गारण्टी) का समर्थन करना चाहिए जिससे विदेशो मे पता लगे कि हम अपने वचन का पालन करते है। यह तो केवल पहला कदम है — — न मालूम अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो के मामले मे हमे कितने वायदे करने पडे। हमारा एक गलत कदम हमे विनाश के कगार पर पहुँचा देगा।"

—वही, पृष्ठ 45

कितने सुन्दर ढग से स्पष्ट किया है कि दिये गए वचनो का पालन करना किसी भी राष्ट्र का मूल सिद्धात तो होना ही चाहिए किन्तु राजनैतिक दृष्टि-कोण मे भी उसका कितना महत्व है !

सविधान सभा और ससद के अधिकारो मे क्या अन्तर है ? और सविधान का उद्देश्य क्या है ? यानी केवल सविधान सभा ही सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न थी, ससद प्रभुत्व-सम्पन्न नही है। सविधान सभा को अधिकार था कि वह भावी ससद पर जो चाहे सो अकुश लगा सके। क्योकि ससद को शक्ति या अधिकार देने वाला तो सविधान सभा द्वारा वनाया गया सविधान ही है।

प्रतिश्रुत सेवाओ को अतीत मे जो गारण्टियाँ दी गई थी, उनके सम्बन्ध मे उसी दिन सरदार वल्लभभाई पटेल ने कहा

"क्या आपने उस इतिहास को पढा है ? या स्वय इतिहास वनाना शुरू करने के वाद आप उस इतिहास की परवाह नही करते। यदि आप का

इकरार कर दें जिनमे हमारी जिम्मेदारी का उल्लेख हो। विश्व का नतिक भाग स्थान करने की महत्वाकाक्षा रखने वाल हम लागो को अपने विषय म यह नही कहलवाना चाहिए कि हमे कीमत तो हर चीज की पता है किन्तु मूल्य किसी का नहीं पता।"

—भारतीय रियासता क एकीकरण की कहानी पृष्ठ 467

इसम सन्देह नही भारतीय नरेशा के इन त्यागा का राष्ट्र सदव ऋणी रहगा। यदि सविधान की धारा 363 या अन्य धारायें नरेशो का पक्ष निबल भी बना द तब भी राष्ट्र क नेताओ द्वारा नरेशा को दिये गय वचनो एव आश्वासनो को पूरा करना नतिक रूप स तो हमारा कर्त्तव्य है ही अत राष्ट्रीय राजनीति की दृष्टि से भी इसका बडा महत्व है—हमे ससार को यह बता देना है, हम वस्तु की कीमत पर ध्यान न देकर उसक मूल्य का सम्मान करते है।

रियासतो के भारत म सविलयन के समय नरेशो ने सरदार वल्लभ भाई पटेल के सामने सुझाव रखा था कि सविलयन अनुबधो को सयुक्त राष्ट्रसघ म रजिस्टर करा लिया जाय ताकि काला तर मैं भारत इनका उल्लघन न कर सके। उत्तर मे सरदार पटेल न व्यग्यात्मक स्वर म कहा था कि गोरी चमडी (अग्रेजो) के शब्दो पर तो उन्होंने दो सौ वष तक विश्वास किया कि तु अपनी चमडी (भारतीयो) के शब्दो पर उन्हे शुरु मे ही अविश्वास होने लगा। नरेशो ने सरदार की बात मान ली और सयुक्त राष्ट्र सघ मे अनुबन्धो के रजिस्टर कराने का विचार त्याग दिया।

नरेशा की आशका निमूल नही थी, किन्तु सरदार का विश्वास सही *नही रहा—गोरी चमडी वाले विदेशियो ने तो नरेशो के साथ अपने वचनो* का पालन अन्त समय तक करक नतिकता की रक्षा की। किन्तु काली चमडी *वाले अपने ही भाई बन्धु व्यक्तिगत राग द्वेष की भावना से ग्रस्त केवल 20* वष बाद ही नतिकता का ठुकरा कर विश्वासघात करने पर तुल रहे हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर काली गोरी चमडी की इस तुलना का प्रभाव केवल भारतवासियों के विरुद्ध ही नही, समूचे अफ्रीका व एशिया, दोनो महाद्वीपों के निवासियो, के विरुद्ध पडेगा।

17 अक्तूबर 1949 के दिन सविधान को अन्तिम रूप दिए जाने के बाद

मारे वयोवृद्ध नेता आचार्य जे० वी० कृपलानी ने सविधान सभा मे अपने उद्गार प्रगट किये जो सदैव स्मरण रखने योग्य हैं :—

"मै चाहता हूँ कि सदन इस वात का ध्यान रखे कि हमने जो कुछ यहा प्रतिपादित किया है, वे केवल कानूनी, साविधानिक तथा औपचारिक सिद्धात ही नही है वल्कि नैतिक सिद्धान्त है और जीवन नैतिक सिद्धान्तो के वल पर आगे वढता है। जीवन मे नैतिक सिद्धान्त अनिवार्य है चाहे वह जीवन व्यक्तिगत हो, सार्वजनिक हो, वाणिज्यिक हो, राजनीतिक हो अथवा प्रशासक का हो। उनको तो पूर्णरूपेण जीवन मे घटाना पडता है। यदि हम सविधान की सफलता चाहते है तो हमे इन वातो को याद रखना होगा।"

सविधान सभा की वहस, भाग 10, सख्या 10, पृष्ठ 454

हमारे राष्ट्रीय नेता के इन शब्दो मे केवल भारत के लिए ही नही वल्कि विश्व की सभी सरकारो एव सम्पूर्ण मानव जाति के लिए एक सदेश है —

कोई भी समाज विना नैतिक सिद्धान्तो के स्वस्थ्य नही रह सकता। नैतिकता का सचार तो समाजरूपी शरीर के अग-अग मे रक्त की भाँति होते रहना चाहिये। जिस प्रकार शरीर के किसी अग मे रक्त का सचालन रुक जाने से वह अग कार्यशील नही रहता। इसी प्रकार समाज के जिस भाग मे नैतिक सिद्धान्तो की अवहेलना की जायेगी, उसी भाग की व्यवस्था शिथिल पड जायेगी।

राज्य व्यवस्था किसी भी प्रकार की हो ? उसमे सरकार एव कानून की आवश्यकता नैतिक सिद्धातो को वनाये रखने के लिए ही होती है।

समाज रूपी शरीर मे शासक वर्ग मस्तिष्क सरकार हृदय एव कानून रक्त वाहिनी नाडिया है। हृदय का कार्य तो दूषित रक्त को शुद्ध करके उसे शरीर में प्रवाहित करना है। यदि शरीर के राजा मस्तिष्क के किसी कार्य के कारण, हृदय से ही दूषित रक्त प्रवाहित होने लगे तो शरीर का क्या होगा ? एव स्वय मस्तिष्क की क्या दशा वनेगी ?

सविधान सभा, जिसके प्रति राष्ट्र की सम्पूर्ण जनता श्रद्धावान थी, जो सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न थी, जिसने अतीत एव वर्तमान के आधार पर देश के उत्थान के लिए सविधान का प्रारूप तैयार किया था। उस प्रारूप मे संसद की सीमायें निर्धारित की गई है। उसी सभा के प्रमुख सदस्यो के

व्यवस्था में संविधान की आत्मा प्रतिध्वनित हो रही है—संविधान द्वारा दी गई गारंटियों को पूरा करो – राष्ट्रीय नेताओं द्वारा दिए गये आश्वासनों एवं वचनों का पालन करो। उनके विपरीत जाना नैतिक सिद्धान्तों का गला घोटना एवं सत्ता का दुरुपयोग है जो देश व समाज के लिए हानिकारक होगा।

नरेशों के प्रिवीपर्सों एवं विशेषाधिकारों को समाप्त करने का विचार हो, नैतिक दृष्टि में एक विश्वासघात है हमारी संस्कृति एवं संविधान की आत्मा के विरुद्ध है। इससे हमारे राष्ट्रीय गौरव को तो ठेस पहुंचेगी ही उन स्वर्गीय नेताओं की आत्मा को भी दुख होगा जिन्होंने इन सब नरेशों को भाँति भाँति के आश्वासन दिए थे।

हमारी परम्पराएँ

प्राण और वचन

महाराजा दशरथ ने अपनी प्रिय रानी कैकेई को दो वरदान देने का वचन दिया। कैकेयी ने एक में भरत को राज्य और दूसरे में राम को बनवास मांगा तो महाराज दशरथ प्रिय पुत्र राम से 14 वर्षों के वियोग की कल्पना मात्र से ही काँप उठे। उन्होंने क्रोध में भरकर कैकयी को बहुत बुरा भला तक कह डाला। तब कैकयी ने व्यंग्य करते हुये कहा था तो महाराज आप अपने वचनों से फिर जाइये।

इसी व्यंग्य के उत्तर में दशरथ जी ने अपने कुल की रीति बतलाई थी —

'रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई॥

दशरथ अपने वचनों से नहीं फिरे और उन्होंने राम के वियोग में प्राण त्याग दिये। किन्तु राम ने केवल अपने पिता के वचनों का ही पालन नहीं किया बल्कि इस परम्परा को अपने जीवन एवं व्यवहार में इस सीमा तक ढाला था कि उन्होंने राजनीति में भी उसको सबसे अधिक महत्व दिया।

जव उन्होने विभीषण को लका का राजा वना देने का वचन दिया तो जामवन्त ने शका करते हुए राम से प्रश्न किया, "महाराज! यदि किसी कारण वश रावण भी आपकी शरण मे आ गया तो आपके इन वचनो का क्या होगा ?"

राम ने बडे सहज स्वभाव से उत्तर दिया "लका का राजा तो विभीषण ही होगा। रावण को मै अयोध्या का राज दे दूँगा।"

"और आप ?"

"मै अपना सारा जीवन इसी तरह जगलो मे व्यतीत कर दूँगा।"

यह थी वचनो को पालन करने की हमारी परिपाटी और भावना।

सवसे अधिक मार्मिक स्थल लक्ष्मण शक्ति के समय का है—लक्ष्मण के प्राण बच जाने की आशा धूमिल हो चली है, उस समय राम करुण विलाप करते हुए कहते है :—

"हे लक्ष्मण! सीता रावण की कैद मे है, अयोध्या मे भरत व माताऐं हम लोगो के वियोग मे दु खी है, अयोध्या वासी भी अपने को अनाथ समझ रहे है। इस घोर विपत्ति मे भी तू मुझे अकेला छोड कर जा रहा है। किन्तु इन सव दुखो : से अधिक दु ख तो मुझे इस वात का है— हमने विभीषण को लका का राजा बना देने का वचन दिया है, वह तेरे विना पूरा हो सकेगा, इसमे मुझे सन्देह है।"

लक्ष्मण जैसे प्रिय भाई को मृत्यु के गाल मे जाते हुए देखकर भी राम को दिए हुए वचनो का कितना ध्यान है ? उन्हे पूरा करने की कितनी लगन है ? उन्हे भाई की मृत्यु से भी अधिक वचन पूरा न हो पाने का दु ख है।

राम के इस चरित्र मे हमारी सस्कृति हमारी परम्पराऐं, हमारे पूर्वजो के चरित्र एव उनके वचन पालन की झलक है। हमारी सामाजिक मर्यादा का दिग्दर्शन है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने कभी मर्यादा का उल्लघन नही किया, इसीलिए तो वापू ने भारत मे राम राज्य लाने की कल्पना की थी।

इसी प्रकार महाभारत काल मे राजनीतिज्ञो मे शिरोमणि भगवान कृष्ण के चरित्र मे भी हम यही वात पाते है—उनका राजनैतिक जीवन सार्वजनिक हितो से भरा हुआ था। यद्यपि उन्होने आवश्यकता पडने पर कूटनीति को भी अपनाया था किन्तु दिये गए वचनो की पावन परम्परा को कभी भग नही होने दिया। अपने वडे भाई वलराम व कौरवो को उन्होने आश्वासन दिया था कि वह युद्ध मे पाण्डवो को केवल अपनी राय देगे, कौरवो के व . शस्त्र नही उठायेगे।

युद्ध म ऐसे अनवा अवसर आय, जब श्रीकृष्ण के लिए कौरवो क विरुद्ध शस्त्र ग्रहण करना अनिवाय सा ही था कि तु उन्होंने अपना वचन नहीं तोड़ा। यहां यक कि उनके सोलह वर्षीय भा जे अभिमन्यु को सात महारथियो ने निहत्था करके धोखे से मार डाला, फिर भी वह शान्त ही रहे।

एक बार अवश्य ही भीष्म पितामह द्वारा पाण्डवो की सेना का बुरी तरह हनन किये जाने पर उन्होंने श्री म भरकर रथ का पहिया उठा लिया। भीष्म पितामह, श्रीकृष्ण की इस सामर्थ से भली भांति परिचित थे कि वह रथ के पहिये का ही चक्र के रूप मे प्रयोग करके कौरवो की सेना का बहुत संहार कर सकते थे। पितामह ने दौड कर कृष्ण को उनकी प्रतिज्ञा की याद दिलाई और कृष्ण ने रथ का पहिया भूमि पर फेंक दिया।

इस घटना के द्वारा श्री कृष्ण ने एक सदेश दिया है—युद्ध जसे स्थल पर भी यदि किसी आवेग म आकर मनुष्य अपने दिये हुए वचनो का भग करने के लिए तत्पर हो उठे तो भी उन वचनो की याद चाहे शत्रु द्वारा ही क्या न दिलाई जाए, उसे अपना वचन भग नही करना चाहिए।

वचन निभाने की बात हमारे देश की केवल पौराणिक गाथायें ही नही है बल्कि ऐतिहासिक घटनाए भी हैं। सिकन्दर के आक्रमण से लेकर वतमान काल तक का हमारा इतिहास ऐसी अनेको घटनाओ से भरा पडा है जब हमने बडी बडी हानिया उठाकर भी दिए गए वचनो का पालन किया है।

सम्राट अकबर ने महाराणा प्रताप की देश भक्ति और धय से प्रभावित होकर एक शाही फरमान निकाला था— 'महाराणा प्रताप की सेना युद्ध म एक बार जिस क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लेगी, उस क्षेत्र पर शाही सेना फिर दूसरी बार आक्रमण नही करेगी।'

सम्राट ने इस वचन का पूरी तरह पालन किया। भले ही महाराणा प्रताप अपने जीवन म मेवाड विजय न कर सके किन्तु जितने क्षेत्र पर उन्होंने अधिकार किया था वह उनका व उनके वंशजो का स्वतंत्र राज्य समझा गया।

कच्छ के रन के विषय म 'कच्छ ट्रिब्यूनल' के फसले के अनुसार पाकिस्तान को जब भूमि देने का प्रश्न उठा तो विरोधी दलो ने उसका डटकर विरोध किया। इस विरोध का उत्तर देते हुए हमारे उपप्रधान मंत्री माननीय श्री मुरारजी देसाई ने भी यही कहा था —

"रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्राण जाहुँ बरु वचन न जाई।'

हमने 'ट्रबूनल' का फैसला मानने का वचन दिया है, इसलिए हमे उसके
[अ]नुसार काम करना ही चाहिए। काग्रेस दल के सदस्यो ने हर्षध्वनि करके
[इ]सका समर्थन किया।

विभाजन के समय हमारा देश विकट आर्थिक संकट से ग्रस्त था, शरणा-
र्थियो की समस्या भयानक रूप से मुँह बाये सामने खडी थी। किन्तु विभाजन
के समझौते के अनुसार हमे पाकिस्तान को 55 करोड़ रुपया देना था।
भारतीय नेता इस रुपये की देनदारी को टालना चाहते थे। किन्तु महात्मा
गान्धी ने यह रुपया पाकिस्तान को दिलवाया। उनका कहना था, "शत्रु को भी
दिए गए वचनो को भग करना कभी भी और किसी भी दशा मे उचित नही
है।"

कैसी विडम्बना है ? शत्रु को तो भूमि और रुपया देने के लिए हम दिए
गए वचनो का पालन करना अपना कर्त्तव्य और सास्कृतिक परम्परा मानते
है। किन्तु जिन नरेशो ने अपने राज्यो का पाँच लाख वर्ग मील का क्षेत्र सहज
ही मे राष्ट्र को समर्पित कर दिया, उन्हे दिए गए वचनो की हम अवहेलना
करना चाहते है ?

विश्वास

प्राण देकर भी वचनो का पालन करना तो हमारी सास्कृतिक परम्परा
है ही। किन्तु एक पक्षीय विश्वास को पूरा करना भी हमारे चरित्र की एक
विशेषता रही है।

विभीषण राम की शरण में इस विश्वास को लेकर आया था कि राम
उसे अपना सरक्षण अवश्य प्रदान करेगे। यह विभीषण का राम के प्रति एक
पक्षीय विश्वास ही तो था। केवल वचन देकर उसे निभाने की नीति से तो
राम उसे अपनी शरण मे लेने के लिए बाध्य नही थे। किन्तु हमारे यहाँ
शरणागत की रक्षा करना भी वचन—पालन के समान ही नैतिक एव पवित्र
कर्तव्य माना गया है। इसीलिए श्री राम ने, यह जानते हुए भी कि विभीषण
उनके शत्रु रावण का छोटा भाई था, न केवल सस्नेह उसको अपना सरक्षण
प्रदान किया अपितु उसे लका का राजा भी घोषित कर दिया।

इन्द्र ने याचक के रूप में कर्ण से उनके कवच और कुंडल मांगे। इन दो वस्तुओं के कारण ही कर्ण अजेय थे। किन्तु इन्द्र भी एक पक्षीय विश्वास लेकर कर्ण के पास गए थे। कर्ण ने यह जानते हुए भी कि कवच व कुंडल दे देने से मेरी मृत्यु अवश्यम्भावी है वे दोनों वस्तुएँ इन्द्र को दे दीं।

सत्यवादी हरिश्चन्द्र की कथा जिससे महात्मा गांधी अपने बचपन में ही बहुत प्रभावित हो चुके थे कौन नहीं जानता?

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ़ हरिश्चन्द्र को टरै न सत्य विचार॥

राजस्थान का तो इतिहास ही वचनों एवं प्रतिज्ञाओं का इतिहास है। आशा और विश्वास को लेकर रक्षा सूत्र की गाथाओं से भरा पड़ा है। यदि किसी नारी ने किसी के पास राखी का एक डोरा भेज कर अपनी रक्षा की मांग कर ली तो राखी प्राप्त करने वाला उस नारी के आशा एवं विश्वास के कारण उसकी रक्षा के बन्धन में बंध गया। भले ही उसने अपनी इस मुंह बोली बहिन की सूरत भी न देखी हो उससे परिचित भी न हो किन्तु उस तो बहिन की रक्षा में अपना तन, मन, धन सब कुछ दांव पर लगा ही देना होता था।

भारत की इस परम्परा को केवल हिन्दुओं ने ही नहीं मुसलमानों ने भी निभाया। इतिहास की एक प्रसिद्ध घटना रानी कर्णवती और हुमायूँ की है। रानी कर्णवती हुमायूँ के पिता बाबर के शत्रु राणा सांगा की पत्नी थीं। किन्तु हुमायूँ ने रानी कर्णवती की राखी पाकर गुजरात के नवाब से मेवाड़ की रक्षा की। इस प्रकार राखी के एक डोरे ने धार्मिक कट्टरता व पुरानी शत्रुता के बन्धनों को तोड़ कर दो शत्रुओं को भाई-बहिन बना दिया।

यदि ध्यान पूर्वक देखा जाये तो भारतीय रियासतों के सम्मिलन की घटना इन घटनाओं से भी अधिक महत्वपूर्ण है।

राष्ट्रीय नेताओं ने समस्त भारतीय जनता की ओर से एक आशा एवं विश्वास लेकर नरेशों से उनके राज्यों एवं अधिकारों की याचना की। भारतीय संस्कृति के उपासक व संरक्षक नरेशों ने स्वयं की शानदार वंश की परम्परा में रहते हुए इस मांग को स्वीकार करके अपना सब कुछ राष्ट्र को अर्पण कर दिया।

डा० वी० पी० मेनन के शब्दों में "जैसा कि सरदार ने स्वीकार किया था कि शासक मान्य अनुबन्ध के अनुसार अपना कर्तव्य पूरा कर चुके अदा

उन्होने तो अपनी रियासते एव शासन सत्ता भारत सरकार को सौप दी। इस समय उनके पास मोल भाव करने की कोई ताकत नही बची है।"

इतिहास की यह अपूर्व घटना है जब कि देने वाले ने [मांगने वाले पर विश्वास करके अपना सब कुछ उसके हाथो मे दे दिया हो। किन्तु राष्ट्रीय नेताओ ने भी नरेशो के विश्वास को टूटने नही दिया, उन्होने नरेशो से बात-चीत करके उनकी इच्छानुसार ही उनके प्रिवीपर्सो की धन राशि को निश्चित करके उनके विशेषाधिकारो को भी सुरक्षित रखा।

श्री० वी० पी० मेनन ने आगे कहा है, "यदि ऋण दाता निर्बल हो जाये तो ऋणी को यह शोभा नही देता कि वह ऋण चुकाने से इन्कार कर दे।"

राष्ट्र, नरेशो की राष्ट्रीय भावना एव उनके त्यागो का ऋणी है, अपने त्यागो के कारण ही तो वे आज इतने निर्बल हो गए है कि भारत सरकार उनके विरुद्ध अपनी मन मानी करने पर उतारू हो रही है।

यदि सरकार प्रिवी पर्सो एव विशेषाधिकारो को समाप्त करने की अन्याय पूर्ण नीति मे सफल हो गई तो इस से हमारे पुराणो की गौरव गाथाये एव वे ऐतिहासिक घटनाये, जिन पर हमे गर्व है, फीकी पड जायेगी।

क्योकि अपना आचरण ही यदि अपनी सास्कृतिक परम्परा के अनुकूल न हो तो केवल पूर्वजो के सत्कार्यो पर गर्व करना भी कोई महत्व नही रखता।

भूतपूर्व विधि मन्त्री श्री अशोक सेन ने उचित ही कहा है कि इस घटना का प्रभाव केवल वर्तमान पीढी पर ही नही, आगे आने वाली पीढियो पर भी पडेगा। क्या हमारी भावी पीढिया हमारे ऊपर उसी तरह गर्व कर सकेगी, जिस तरह आज हम अपने पूर्वजो पर करते है ?

जब वे इतिहास मे यह पढेगी की हमने अपने पूज्य नेताओ द्वारा दिये गये वचनो एव आश्वासनो को भग करके अन्याय पूर्ण कार्य किया था तो उनका मस्तक लज्जा से झुक जायेगा।

वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप ने कहा था, "यदि राणा साँगा और मेरे बीच मे मेवाड़ की गद्दी पर और कोई राजा न हुआ होता तो आज मेवाड़ पराधीन न होता।"

हमारी भावी पीढियाँ यदि गाँधी के आदर्शो पर चलने वाली हुई, उनमे नैतिक बल हुआ तो वे भी कहेगी," भले ही हमारा देश नौ सौ वर्ष परतन्त्र

इन्द्र ने याचक के रूप में कर्ण से उनके कवच और कुंडल मांगे। इन दो वस्तुओं के कारण ही कर्ण अजेय थे। किन्तु इन्द्र भी एक असीम विश्वास लेकर कर्ण के पास गए थे। कर्ण ने यह जानते हुए भी कि कवच व कुंडल दे देने से मेरी मृत्यु अवश्यम्भावी है वे दोनों वस्तुएँ इन्द्र को दे दी।

सत्यवादी हरिश्चन्द्र की कथा जिससे महात्मा गांधी अपने बचपन में ही बहुत प्रभावित हो चुके थे, कौन नहीं जानता?

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ़ हरिश्चन्द्र को टरै न सत्य विचार।।

राजस्थान का तो इतिहास ही वचनों एवं प्रतिज्ञाओं का इतिहास है। आशा और विश्वास को लेकर रक्षा सूत्र की गाथाओं से भरा पड़ा है। यदि किसी नारी ने किसी के पास राखी का एक डोरा भेज कर अपनी रक्षा की मांग कर ली तो राखी प्राप्त करने वाला उस नारी के आशा एवं विश्वास के कारण उसकी रक्षा के बन्धन में बंध गया। भले ही उसने अपनी इस मुँह बोली बहिन की सूरत भी न देखी हो, उससे परिचित भी न हो, किन्तु उसे तो बहिन की रक्षा में अपना तन मन धन सब कुछ दांव पर लगा ही देना होता था।

भारत की इस परम्परा को केवल हिन्दुओं ने ही नहीं मुसलमानों ने भी निभाया। इतिहास की एक प्रसिद्ध घटना रानी कर्णवती और हुमायूं की है। रानी कर्णवती हुमायूं के पिता बाबर के शत्रु राणा सांगा की पत्नी थीं। किन्तु हुमायूं ने रानी कर्णवती की राखी पाकर गुजरात के नवाब से मेवाड़ की रक्षा की। इस प्रकार राखी के एक डोरे ने धार्मिक कट्टरता व पुरानी शत्रुता के बन्धनों को तोड़ कर दो शत्रुओं को भाई-बहिन बना दिया।

यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो भारतीय रियासतों के विलियन की घटना इन घटनाओं से भी अधिक महत्वपूर्ण है।

राष्ट्रीय नेताओं ने समस्त भारतीय जनता की ओर से एक आशा एवं विश्वास लेकर नरेशों से उनके राज्यों एवं अधिकारों की याचना की। भारतीय संस्कृति के उपासक व संस्कारी नरेशों ने स्वयं की शानदार वंश की परम्परा में रहते हुए इस मांग को स्वीकार करके अपना सब कुछ राष्ट्र को अर्पण कर दिया।

भा० सा० पा० मनन के रूप में देखा कि सरकार ने स्वीकार किया था कि शासक सदा अनुबन्ध के अनुसार अपना कर्तव्य पूरा कर चुके अर्थात्

उन्होने तो अपनी रियासते एव शासन सत्ता भारत सरकार को सौप दी। इस समय उनके पास मोल भाव करने की कोई ताकत नही बची है।"

इतिहास की यह अपूर्व घटना है जब कि देने वाले ने [मागने वाले पर विश्वास करके अपना सब कुछ उसके हाथो मे दे दिया हो। किन्तु राष्ट्रीय नेताओ ने भी नरेशो के विश्वास को टूटने नही दिया, उन्होने नरेशो से बात-चीत करके उनकी इच्छानुसार ही उनके प्रिवीपर्सो की धन राशि को निश्चित करके उनके विशेषाधिकारो को भी सुरक्षित रखा।

श्री० वी० पी० मेनन ने आगे कहा है, "यदि ऋण दाता निर्बल हो जाये तो ऋणी को यह शोभा नही देता कि वह ऋण चुकाने से इन्कार कर दे।"

राष्ट्र, नरेशो की राष्ट्रीय भावना एव उनके त्यागो का ऋणी है, अपने त्यागो के कारण ही तो वे आज इतने निर्बल हो गए है कि भारत सरकार उनके विरुद्ध अपनी मन मानी करने पर उतारू हो रही है।

यदि सरकार प्रिवी पर्सो एवं विशेपाधिकारो को समाप्त करने की अन्याय पूर्ण नीति मे सफल हो गई तो इस से हमारे पुराणो की गौरव गाथाये एव वे ऐतिहासिक घटनाये, जिन पर हमें गर्व है, फीकी पड जायेगी।

क्योकि अपना आचरण ही यदि अपनी सास्कृतिक परम्परा के अनुकूल न हो तो केवल पूर्वजो के सत्कार्यो पर गर्व करना भी कोई महत्व नही रखता।

भूतपूर्व विधि मन्त्री श्री अशोक सेन ने उचित ही कहा है कि इस घटना का प्रभाव केवल वर्तमान पीढी पर ही नही, आगे आने वाली पीढियो पर भी पडेगा। क्या हमारी भावी पीढिया हमारे ऊपर उसी तरह गर्व कर सकेगी, जिस तरह आज हम अपने पूर्वज़ो पर करते है ?

जब वे इतिहास मे यह पढेगी की हमने अपने पूज्य नेताओ द्वारा दिये गये वचनो एव आश्वासनो को भग करके अन्याय पूर्ण कार्य किया था तो उनका मस्तक लज्जा से झुक जायेगा।

वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप ने कहा था, "यदि राणा सांगा और मेरे बीच मे मेवाड़ की गद्दी पर और कोई राजा न हुआ होता तो आज मेवाड पराधीन न होता।"

हमारी भावी पीढियाँ यदि गाँधी के आदर्शो पर चलने वाली हुई, उनमे नैतिक बल हुआ तो वे भी कहेगी," भले ही हमारा देश नौ सौ वर्ष परतन्त्र

रहा था किन्तु हमारी नैतिकता का स्तर कभी नहीं गिरने पाया। यदि पंडित नेहरू और सरदार पटेल की पीढ़ी व हमारी पीढ़ी के बीच में, पंडित नेहरू के बाद वाली पीढ़ी न हुई होती, तो आज हमारे वचनों पर किसी को सन्देह करने का साहस न होता।"

नरेशों के साथ किये गये समझौतों को भंग करना पीढ़ी दर पीढ़ी के लिए राष्ट्रीय सम्मान का प्रश्न है।

राजनैतिक

हमारी सीमाएँ

क्षेत्रफल के विचार से हैदराबाद व कश्मीर सब से बड़ी रियासतें थीं। अन्य 552 रियासतों के भारतीय संघ में विलीनीकरण के उपरान्त भी इन दोनों रियासतों ने अपना अस्तित्व स्वतन्त्र ही बनाये रखा। हैदराबाद भारतीय संघ के बीच में थी, इस लिए पाकिस्तान वहाँ अपने एजेन्टों के द्वारा भारत के विरुद्ध चुपके चुपके कार्य कर रहा था। किन्तु जम्मू कश्मीर की स्थिति कुछ दूसरी थी, इसके चारों ओर रूस, चीन, अफगानिस्तान पाकिस्तान व भारत की सीमायें इसे घेरे हुए थीं। पाकिस्तान को रियासत की स्वतन्त्रता का अनुचित लाभ उठाने का अवसर हाथ आ गया उसने बर्बर कबालियों को उकसा कर कश्मीर पर आक्रमण कर दिया।

हिज हाईनेस महाराजा हरीसिंह ने अपनी जनता को पाकिस्तान के तानाशाही शासन से बचाने के लिए अपनी रियासत जम्मू कश्मीर का भारत संघ में विलय कर दिया। दिनांक 26 अक्तूबर 1947 को भारत सरकार और महाराजा कश्मीर के बीच में एक समझौता हुआ जिसके फलस्वरूप जम्मू कश्मीर राज्य एक प्रदेश के रूप में भारत में विलय हो गया। भारत की सेना का वहाँ इस प्रदेश की रक्षा के लिए पाकिस्तानी सेना से भारी संघर्ष हुआ और पाकिस्तान की सेना पीछे खदेड़ दी गई।

इसी बीच अंग्रेजी कूटनीति के हम फिर शिकार हो गए। भारत के तत्कालीन गर्वनर जनरल लार्ड माउन्ट बैटन ने प्रयत्न करके दोनो देशो के बीच युद्ध विराम की घोषणा करा दी। जिस देश की सेनाएं जहाँ तक पहुँच सकी थी, वही युद्ध विराम की सीमा निर्धारित कर दी गई।

इस प्रकार हमारे इस सुन्दर प्रदेश के एक तिहाई भाग पर जिसमे गिलगित का महत्वपूर्ण क्षेत्र भी है, पाकिस्तान ने अपना अनैतिक रूप से अधिकार जमा रखा है। किन्तु कश्मीर के शासक महाराजा हरीसिंह ने अपना राज्य भारत सरकार को समर्पित किया है, इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार जम्मू कश्मीर का जो भाग हमारे पास है, वह तो हमारा है ही, किन्तु पाक-अधिकृत एक तिहाई भाग पर भी हमारा नैतिक व कानूनी अधिकार है।

भारतीय नरेशो के साथ हुए अनुबन्ध एव प्रसविदाये समाप्त किए जाने पर जम्मू कश्मीर नरेश के साथ हुए अनुबन्ध एव प्रसविदाएं भी समाप्त हो जायेगी तब सयुक्त राष्ट्र मे भारत और पाकिस्तान के बीच मे चल रहे विवाद पर हमारा पक्ष भी निर्बल पड जायेगा। यह समझ मे नही आता कि सरकार नरेशो के 'प्रिवी पर्सो' एव विशेषाधिकारो को समाप्त करने के अनैतिक कार्य करने की बजाय जम्मू कश्मीर राज्य को विशेष श्रेणी प्रदान करने वाली सविधान की धारा 370 को समाप्त क्यो नही करती ?

सिक्कम के शासक महाराजा चोग्याल ने जब भारत सरकार से भारत और सिक्कम के बीच हुई सन्धि पर नये सिरे से पुन. विचार करने का आग्रह किया तो भारत सरकार ने उसे टाल दिया। निस्सन्देह सन्धि की पवित्रता को अक्षुण बनाये रखने के लिए सरकार का यह कदम उचित ही था किन्तु भारतीय नरेशो के साथ वचन भग किये जाने का वहाँ के शासक एव जनता पर बुरा प्रभाव पडना अनिवार्य ही है, उन्हे अपने साथ हुई सन्धि पर भी शका होने लगेगी जो हमारे लिए किसी प्रकार भी हितकर नही है।

कच्छ और त्रिपुरा की सीमान्त रियासतो के विषय मे पहले ही लिखा जा चुका है। लका से भी कच्चा तिवू, जो हमारी एक भूत पूर्व रियासत का ही एक भाग है, के सम्बन्ध मे विवाद ही है। इन सभी विवाद ग्रस्त क्षेत्रो की क्षेत्रीय अखडता, हमारे पक्ष मे, इन क्षेत्रो के नरेशो के साथ हुए सविलियन प्रालेखो, अनुबन्धो एव प्रसंविदाओ पर ही निर्भर करती है।

इसके अतिरिक्त जिन विदेशियों की पूंजी विनियोग मे लगी हुई है, भारत सरकार ने उन्हे आश्वासन दिया है—वे अपना लाभ अपने देश भेज सकते हैं तथा जब उनकी इच्छा हो वे अपनी पूंजी वापस ले जा सकते हैं।

क्या उन्हें सरकार के आश्वासनों पर भरोसा रह जाएगा ? क्या विदेशी सरकारें अपने ऋणों को चुकाए जाने के लिए हमारा विश्वास करेंगी ?

इसी तरह उन सरकारी 'बॉंडों के भुगतानों पर से भी जनता का विश्वास उठ जायगा, जिस पर सरकार ने भविष्य में रुपया देने या देते रहने का वचन दे रखा है। क्या मालूम इस सरकार के बॉंडस का भुगतान देने के लिए दूसरी सरकार मना कर दे ? क्या इसका उत्तरदायित्व वर्तमान सरकार पर नहीं होगा, जो नरेशों के प्रिवीपर्स बन्द करके इस अनैतिकता का मार्ग खोलने जा रही है ?

नरेशों की लोकप्रियता

नरेश और चुनाव

चुनाव लोकतन्त्र का मूलाधार होते है और किसी भी विजयी प्रत्याशी की लोक-प्रियता का परिचायक कहे जा सकते है। किन्तु उल्टे-सीधे हथकडो और 'स्टटो' के वल पर सफलता पा लेने को ही लोक-प्रियता की सज्ञा नही दी जा सकती। लोक-प्रियता तो वह है, चुनाव 'स्टटो' और भारी चुनाव प्रचारो के विना ही प्रत्याशी स्वय तो हजारो-लाखो मतो से विजयी हो ही जाये किन्तु जिस किसी दूसरे प्रत्याशी की ओर अपने समर्थन का सकेत भर कर दे, विजय श्री उसी के गले मे माला पहिना दे।

एक समय था जव भारत मे काग्रेस के अतिरिक्त कोई दूसरा राजनैतिक दल नही था, उन दिनो गाधी और नेहरू की लोक-प्रियता के वल पर मत वटोर कर, सम्पूर्ण कांग्रेस दल की लोक प्रियता का ढिढोरा पीटा जाता था। कुछ तो सकुचित मनोवृत्ति के लोग यहाँ तक दम्भ भरते पाये गये कि यदि काग्रेस किसी वन्दर को भी खडा कर दे तो वह भी चुनाव मे जीत जाएगा।

'भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अनुसार ब्रिटिश भारतीय जनता को प्रान्तीय स्वराज्य का अधिकार दिये जाने पर भारत मे सब से पहला चुनाव 1937 मे हुआ था।

इस चुनाव मे मत देने के दो तरीके व्यवहार मे लाये गये थे – एक तो पढे लिखे लोग मत पत्र पर प्रत्याशी के नाम के आगे चिन्ह लगा कर मतदान पेटी मे डाल देते थे। दूसरा मतदाता से पूछ कर चुनाव अफसर स्वय मत पत्र पर उसके वतलाये प्रत्याशी के नाम के सम्मुख चिन्ह लगा देते थे। जव मत-

दाता से पूछा जाता था कि वह किस अपना मत देना चाहता है ? तो कांग्रेस प्रत्याशी के समर्थन करने वालों में से अधिकांश के उत्तर थे – गांधी बाबा को जवाहरलाल नेहरू को भारत माता को, तिरंगे झण्डे को । स्पष्ट है, मतदाता प्रत्याशी से या उसके नाम तक से परिचित नहीं था । कांग्रेस ने भी ब्रिटिश सरकार से यह तय कर लिया था—क्योंकि देश में यह पहला चुनाव है मत दाता, मतदान से परिचित नहीं है, इसलिये कोई भी संकेत जो कांग्रेस प्रत्याशी के पक्ष में जाता हो सही माना जाये और मत खारिज न किया जाये । यद्यपि इस चुनाव में अधिकांश स्थानों पर कांग्रेस की ही विजय हुई, 11 प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल बना । और यह विजय केवल गांधी और जवाहरलाल की लोकप्रियता की ही विजय थी । फिर भी कांग्रेस को कई स्थानों पर उल्टे-सीधे हथकण्डों और 'स्टण्ट' का सहारा लेना पड़ा । उत्तर प्रदेश के एटा क्षेत्र से लीडर पत्र के सम्पादक श्री० सी० वाई० चिन्तामणि जो उससे पहले उत्तर प्रदेश सरकार में शिक्षा सदस्य (शिक्षा मन्त्री) रह चुके थे, जिन्हें अवागढ़ के राजा साहब सूर्यपाल सिंह (उत्तर प्रदेश के एक बहुत बड़े जमींदार) का पूरा समर्थन प्राप्त था केवल इन हथकण्डों और स्टण्ट के कारण ही एक सामान्य कांग्रेसी प्रत्याशी से पराजित हो गये थे ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति और रियासतों के भारतीय संघ में सम्मिलित हो जाने के बाद भारतीय नरेशों ने चुनाव क्षेत्र में उतरना आरम्भ करके लोकप्रियता का एक दूसरा नमूना प्रस्तुत कर दिया । दूसरा नमूना इसलिये कहेंगे कि नरेश न तो महात्मा गांधी व श्री जवाहर लाल नेहरू की भांति नेता ही थे और न उन्होंने प्रत्यक्ष रूप में कोई जन सेवा का ही कार्य किया था और राज्य व अपने छोड़ ही चुके थे । इसलिये उनकी लोकप्रियता का अधिकांश श्रेय उनकी वंशानुगत प्रतिष्ठा एवं सम्मान को ही दिया जा सकता है । वे चुनाव में जिस प्रत्याशी के विरुद्ध खड़े हुये हजारों लाखों मतों से उन्होंने विजय प्राप्त की । उनकी विजय किसी राजनैतिक दल के कारण नहीं थी बल्कि वे जिस दल की ओर से खड़े हुये उस दल को उनसे शक्ति मिली ।

सन् 1962 के आम चुनावों में नरसिंह गढ़ (मध्य प्रदेश) के महाराजा जो इस समय कांग्रेस दल से एम० पी० और केन्द्रीय सरकार में उपमन्त्री हैं, एम० पी० व एम० एल० ए० (दोनों ही स्थानों के लिये) के चुनाव के लिये खड़े हुए थे और दोनों ही स्थानों पर बहुत बड़े बहुमत से विजयी हुए । उन्होंने एम० एल० ए० के पद से त्याग पत्र दे दिया । मध्य प्रदेश के मुख्य

मत्री डाक्टर कैलाश नाथ काटजू जो अपने घर के क्षेत्र मे ही इस चुनाव मे पराजित हो चुके थे, उन्हे महाराजा नरसिंह गढ ने अपने स्थान जओरा क्षेत्र से पुन: खडा करके अपना समर्थन दिया। डाक्टर काटजू एक बार भी जओरा क्षेत्र मे नही गये, किन्तु यह महाराजा साहब की ही लोकप्रियता थी कि उनके सकेत मात्र से ही वह चुन लिये गये।

पिछले आम चुनाव मे गुजरात में, ध्रागध्रा नरेश जो लोक सभा की सदस्यता के लिये स्वतन्त्र दल की ओरसे खडे हुए कांग्रेस द्वारा अपनी पूर्ण शक्ति के साथ विरोध करने पर भी जनता ने अपने भूतपूर्व महाराजा के इस निर्णय का हृदय से स्वागत किया। महाराजा साहब के प्रभाव से चकित होकर काग्रेस पत्र फूलछाब के सम्पादक ने उनसे साक्षात्कार प्राप्त करके प्रश्न किया, "भूतपूर्व देशी रियासतो की जनता अब भी इतनी पिछडी हुई और अन्धविश्वासी क्यो है, कि वह अपने राजाओ-महाराजाओ के प्रति ऐसी श्रद्धा रखती है ?

महाराजा साहब ने कहा, "मैं इस बात का उत्तर तब ही दूगा, जबकि तुम यह वचन दो कि मेरे उत्तर को अपने पत्र मे तदनुरूप प्रकाशित करोगे।"

सवाददाता ने उत्तर प्रकाशित करने का वचन दिया।

ध्रागध्रा नरेश ने कटाक्ष करते हुए कहा, "देशी रियासतो की जनता अपने राजा-महाराजाओ के द्वारा किए गए अत्याचारो की चक्की मे सैकडो वर्ष तक पिसती रही, असुविधाओ को धैर्यपूर्वक सहन करती रही। उसके बाद रियासतो के भारत मे सविलयन हो जाने पर वर्तमान शासन ने उसे स्वतन्त्रता दी, सुविधायें दी, प्यार दिया, किन्तु इन पिछले 20 वर्षो मे काग्रेस द्वारा दिये गये प्यार, सुविधाओ व स्वतन्त्रता से वह अघा गई है, अतएव उस अन्याय व अत्याचार को याद करके वह हमारा स्वागत कर रही है।"

सवाददाता महोदय इस व्यगात्मक उत्तर और इसकी सचाई का अनुभव करके दग रह गये, उन्होने महाराजा साहब के इस उत्तर को अपने पत्र मे प्रकाशित भी किया।

ध्रांगध्रा नरेश चुनाव में लाखो मतो से विजयी हुये। उसके बाद एक उप चुनाव में महाराजा साहब ने भूतपूर्व सचिव श्री एच० एम० पटेल का कांग्रेस प्रत्याशी के विरुद्ध समर्थन किया, कांग्रेस की पूरी शक्ति लग जाने के बावजूद भी श्री पटेल 18000 मतो से चुनाव जीते।

टिहरी गढ़वाल के हिज हाईनेस भले ही कांग्रेस दल की ओर से लोक सभा के सदस्य हैं किन्तु जनता में उनकी अपनी लोक प्रियता है। बीकानेर के हिज हाईनेस महाराजा कर्णीसिंह व विषय में कुमारी मणि बेन पटेल का राज्य सभा में दिया गया वक्तव्य उनकी लोक प्रियता बताने के लिये क्या पर्याप्त नहीं है। ग्वालियर की राजमाता महारानी विजय राजे सिंधिया व जयपुर की महारानी गायत्री देवी की लोकप्रियता से कौन परिचित नहीं है?

महाराजा छतरपुर को मैंने बहुत समीप से देखा है। महाराजा होने का उनमें कोई गर्व नहीं, रहन सहन बहुत सादा तथा बातचीत का ढंग बड़ा मधुर व आकर्षक है। राजनीति से दूर रहते हुए भी हर एक से मिलते हैं उनके दुःख दर्द को सहानुभूति पूर्वक सुनते हैं और यथा शक्ति सहायता करने को भी तत्पर रहते हैं। जनता के हृदय में उनके प्रति श्रद्धा और सम्मान किसी भय के कारण नहीं बल्कि उनके गुणों के कारण है। बहुधा लोगों को यह कहते सुना जाता है 'हमारे महाराजा तो संत है।"

इन राजाओं महाराजाओं व महारानियों की लोक प्रियता भले ही महात्मा गांधी और पंडित नेहरू के समान अखिल भारतीय स्तर की न हो किन्तु अपने अपने क्षेत्र में ये लोकप्रियता के सूर्य हैं वहाँ उनके सामने किसी राजनैतिक दल के बड़े बड़े दिग्गज तक टिक नहीं सकते।

नरेशों का प्रभाव

सात सौ वर्ष के मुस्लिम काल और दो सौ वर्ष के अंग्रेजी शासन में रह कर भी भारतीय नरेशों ने अपने नियमों रीति रिवाजों व परम्पराओं को निभाते हुए भारतीय संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखा है। उसका प्रभाव उनकी जनता पर भी भरपूर रहा है।——यही कारण है– अंग्रेजियत जिसकी ब्रिटिश भारत में पनपा व पनपा, उसका वह रियासतों में अपना प्रभाव न जमा सकी। यह भारतीय नरेशों की राष्ट्र को बहुत बड़ी देन है।

भले ही कुछ नरेशों में व्यक्तिगत दोष रहे हों किन्तु उनके शासन काल में जनता को महंगाई भुखमरी, बेकारी और भ्रष्टाचार का सामना नहीं करना पड़ा। यदि आज भूतपूर्व देशी राज्यों की जनता से पूछा जाता है तो

अधिकाँश लोग यही कहते पाये जाते है," अब से तो हम लोग अपने राजाओं के समय मे अधिक सुखी थे। राजाओ ने रियासते छोड कर अच्छा नही किया।"

फिर भी नरेशो ने अपनी दुर्बलताओ पर कभी पर्दा नही डाला। अच्छाइयों और गुणो के ढोल नही पिटवाये, प्रचार नही कराया।

इधर कांग्रेस के शासन मे नारे तो भारतीयता के लगाये जा रहे है। किन्तु प्रसार अंग्रेजियत का हो रहा है। स्वय कांग्रेसी नेताओ का लिबास भले ही खादी और भारतीयता का है, किन्तु रहन-सहन, आचार-विचार, यहाँ तक कि बहुत सो का तो खान पान भी विशुद्ध अग्रेजी ढग का हो गया है।

अब स्वतन्त्र भारत मे अग्रेजियत, अग्रेजो के समय से कही अधिक फैल चुकी है, और फैलती जा रही है। भारतीय सस्कृति का ह्रास हो रहा है।

जहाँ तक व्यक्तिगत दोषो का प्रश्न है, जिन दोषो की नरेशो मे केवल कल्पना मात्र ही की जा सकती थी, वे सारे दोष बहुत से नेताओ मे भरपूर पाये जा रहे है। उनका जनता पर बडा दुष्प्रभाव पडा है—वह समझ रही है—यदि बीस वर्ष की सत्ता का मद इतना अधिक हो सकता है कि सत्तारूढि व्यक्ति अपने दुर्गुणो को अपना अधिकार समझने लगे, तो जिनके पास पीढी दर पीढी से सत्ता थी, यदि उन नरेशो मे कुछ व्यक्तिगत दोष थे भी तो अन होनी बात क्या थी?

सच तो यह है, नरेशो और जनता के बीच मे एक मजबूत कडी है जो एक दूसरे से सम्बन्ध तो बनाये हुए हैं किन्तु न तो जनता ही उस कडी की भावना को समझ रही है और न नरेशो ने ही कभी इस ओर ध्यान दिया है। दोनो ही यह समझ रहे है—वे उसके भूतपर्व नरेश है और वह उनकी भूतपूर्व प्रजा है। उन पुराने सम्बन्धो की जान तो निकल गई, केवल मुर्दा शेष रह गया है।

काँग्रेस भी यह समझ रही है कि वह प्रिवीपर्स और विशेषाधिकारो की समाप्ति के रूप मे मुर्दे को दफना कर इस रही सही कडी को भी समाप्त कर सकती है।

इस मे सन्देह भी नही, इस कडी का बाहरी रूप तो यही है, किन्तु इस मुर्दे मे अभी प्राण शेष है, इसकी आत्मा अभी मरी नही केवल सोई हुई है। मुर्दे को दफना कर भी आत्मा नही दफनाई जा सकेगी।

सही रूप में इस नरेशी का आशय या इस का भावात्मक रूप यह है— जनता का केवल कांग्रेस ही नहीं, किसी भी राजनैतिक दल पर भरोसा नहीं है, उसे वर्तमान नेतागीरी से डर लग गया है। इसलिए वह अपने भूतपूर्व नरेशों से पथ प्रदर्शन की आशा करती है। यही कारण है नरेश चुनाव में जिस प्रत्याशी का समर्थन करते हैं बहुधा वही विजयी हो जाता है।

पथ प्रदर्शन को ही दूसरे शब्दों में नेतृत्व कहते हैं। इस प्रकार नरेश जनता का नेतृत्व करते हुए भी नेतागीरी का जामा नहीं पहिनते और जनता उन्हें अपना नेता समझते हुए भी, नेता नाम से नहीं मानती।



बापू

बापू और समाज वाद

जिस समाज वादी समाज के नाम पर हमारी सरकार, नैतिक सिद्धातो के विपरीत, प्रिवीपर्सो एवं विशेषाधिकारो को समाप्त करने का बहाना ले रही है, उसी के विषय मे राष्ट्र पिता महात्मा गाँधी के विचार भी यहाँ दे देना अप्रसाँगिक न होगा।

बापू से एक बार प्रश्न किया गया—"कांग्रेस समाजवादी दल ने कांग्रेस के लिये जो कार्यक्रम पेश किया है, उसके बारे मे आपकी सामान्य टीका क्या है ?"

बापू का उत्तर था —

"वह मानव स्वभाव मे अविश्वास प्रगट करता है। उसकी सारी भूमिका ही गलत है।"

13 जुलाई सन् 1947 के हरिजन मे बापू ने—"समाज वादी कौन ?" नामक शीर्षक से एक लेख लिखा था। लेख काफी बडा है इस लिए इस की कुछ विशेष ध्यान देने योग्य बातें ही यहाँ लिखी गई हैं .—

"समाज वाद एक सुन्दर शब्द है और जहाँ तक मुझे मालूम है, समाज-वाद मे समाज के सब सदस्य बराबर होते हैं।"

इसी बात को कुछ उदाहरण दे कर, अधिक स्पष्ट करके उन्होंने आगे लिखा है :—

"इस अवस्था तक पहुचने के लिए हम एक दूसरे की तरफ देखते नही रह

सही रूप में इन शब्दों की आत्मा या इन का भावात्मक रूप यह है—जनता को केवल कांग्रेस ही नहीं, किसी भी राजनैतिक दल पर भरोसा नहीं है, उसे वर्तमान नेतागीरी से डर लग गया है। इसलिए वह अपने भूतपूर्व नरेशों से पथ प्रदर्शन की आशा करती है। यही कारण है नरेश चुनाव में जिस प्रत्याशी का समर्थन करते हैं बहुधा वही विजयी हो जाता है।

पथ प्रदर्शन को ही दूसरे शब्दों में नेतृत्व कहते हैं। इस प्रकार नरेश जनता का नेतृत्व करते हुए भी नेता लोगों का जामा नहीं पहिनते और जनता उन्हें अपना नेता समझते हुए भी, नेता नाम से नहीं मानती।



बापू

बापू और समाज वाद

जिस समाज वादी समाज के नाम पर हमारी सरकार, नैतिक सिद्धातों के विपरीत, प्रिवीपर्सों एव विशेपाधिकारो को समाप्त करने का वहाना ले रही है, उसी के विपय मे राष्ट्र पिता महात्मा गाँधी के विचार भी यहाँ दे देना अप्रसाँगिक न होगा।

वापू से एक वार प्रश्न किया गया—"काँग्रेस समाजवादी दल ने काँग्रेस के लिये जो कार्यक्रम पेश किया है, उसके वारे मे आपकी सामान्य टीका क्या है?"

वापू का उत्तर था —

"वह मानव स्वभाव मे अविश्वास प्रगट करता है। उसकी सारी भूमिका ही गलत है।"

13 जुलाई सन् 1947 के हरिजन मे वापू ने—"समाज वादी कौन?" नामक शीर्पक से एक लेख लिखा था। लेख काफी वडा है इस लिए इस की कुछ विशेष ध्यान देने योग्य वातें ही यहाँ लिखी गई है :—

"समाज वाद एक सुन्दर शब्द है और जहाँ तक मुझे मालूम है, समाज-वाद मे समाज के सव सदस्य वरावर होते है।"

इसी वात को कुछ उदाहरण दे कर, अधिक स्पष्ट करके उन्होने आगे लिखा है —

"इस अवस्था तक पहुचने के लिए हम एक दूसरे की तरफ देखते नही रह

सकते। जब तक सारे लोग समाजवादी न बन जायें तब तक हम कोई हल चल न करें। जीवन म कोई फेर फार न करके मायण देत रहें और बाज पक्षी की तरह जहाँ शिकार मिल जाये वहीं उस पर झपट पड़। यह समाज वाद नही है। समाजवाद जैसी शानदार चीज झपट मारने म हम से दूर जाने वाली है।)

(समाज वाद आरम्भ करने के विषय मे उनके विचार)

समाजवाद पहले समाजवादी मे शुरू होता है। यदि आरम्भ करने वाला स्वय ही शू य हो तो परिणाम भी शू य ही होगा।"

(समाज वाद क्या है और कैसे आये ? इस विषय म उनके विचार)

'यह समाजवाद स्फटिक की तरह शुद्ध है। इस लिये सिद्ध करने के साधन भी शुद्ध होने चाहिए। अशुद्ध साधनो मे प्राप्त होने वाला साध्य भी अशुद्ध ही होता है। इसलिये राजा का सिर काट डालने से राजा और प्रजा बराबर नही हो जायगे। और न मालिक का सिर काटने से मालिक और मजदूर बराबर हो जायगे। हम असत्य से सत्य को प्राप्त नहीं कर सकते। सत्य आचरण द्वारा ही सत्य को प्राप्त किया जा सकता है।

अन्त म उन्होंने लिखा है —

"सत्य परायण, अहिंसक और शुद्ध हृदय समाजवादी ही भारत और ससार म समाजवादी समाज स्थापित कर सकेंगे। जहाँ तक मैं जानता हू ससार म कोई भी देश ऐसा नही है जो शुद्ध समाजवादी हो उपरोक्त साधना के बिना ऐसे समाज का अस्तित्व म आना असम्भव है।

बापू के इस अमर स देश म समाजवाद लाने वालो के लिए एक चुनौती है—यदि उन्होंने समाजवाद को अपने जीवन मे ढाल कर सत्यपरायण अहिंसक और शुद्ध हृदय से नरेशो के सामने प्रिवीपर्सों एव विशेषाधिकारों को समाप्त करने का विचार रखा होता तो वे अवश्य इस पर विचार करते। किन्तु यह तो बाज प क्षी की तरह शिकार पर झपट मारने जैसी बात है जो हम समाजवाद से दूर ले जाने वाली है।

बापू और नरेश

सन् 1933 का सविनय कानून भंग आन्दोलन, महात्मा गांधी द्वारा, स्थगित किये जाने के बाद कांग्रेस मे समाजवादी दल का उदय हुआ। कुछ नेताओ ने महात्मा जी से समाजवाद के विषय मे विभिन्न प्रश्न किये। उनमें से एक प्रश्न था :—

"भारत के राजा—महाराजाओ के शासन का अन्त करने की समाज वादी दल की जो माँग है, उसके बारे में आपकी क्या राय है ?"

महात्मा जी ने उत्तर दिया था, "सिद्धान्त की दृष्टि से मैं राजाओं महा-राजाओ के शासन का अन्त करने के पक्ष में नहीं हूँ। मेरा विश्वास इस बात मे है कि लोकतन्त्र की सच्ची भावना के अनुसार उनके शासन में सुधार किया जाये।"

श्री जयप्रकाश नारायण ने गांधी जी के पास समाजवाद के विषय में एक प्रस्ताव का मसविदा बना कर, रामगढ़ में होने वाली कांग्रेस कार्यसमिति के सामने रखने के लिए भेजा था, जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त, राजा-महाराजाओ को समाप्त करने की भी बात कही गई थी। इस प्रस्ताव पर टिप्पणी करते हुये, भारतीय नरेशो के विषय में महात्मा जी ने कहा था :—

"मैं राजाओ सम्बन्धी उनकी सूचना का समर्थन नही करता। कानून की दृष्टि से वे स्वतन्त्र हैं। यह सच है, उनकी स्वतन्त्रता का कोई विशेष मूल्य नही है, क्योकि एक प्रबल शक्ति उनका सरक्षण करती है, लेकिन वे अपनी स्वतन्त्रता का दावा कर सकते है जबकि हम नही कर सकते। श्री जयप्रकाश की प्रस्तावित सूचनाओ मे जो बातें कही गई है उनके अनुसार अगर अहिंसा-त्मक साधनो द्वारा हम स्वतन्त्र हो जायें, तो उस हालत मे, मैं ऐसी कोई समझौते की कल्पना नही कर सकता, जिसमे राजा लोग अपने को खुद ही मिटाने के लिए तैयार होगे।

समझौता किसी भी प्रकार का क्यो न हो, राष्ट्र को उसका पूरा-पूरा पालन करना ही होगा। इसलिये मैं तो सिर्फ ऐसे समझौते की कल्पना कर सकता हूँ, जिसमे बडी बडी रियासतें अपने दर्जे को कायम रखेगी। एक तरह से वह चीज आज की स्थिति से बढकर होगी, लेकिन दूसरी दृष्टि से राजाओ की सत्ता इतनी सीमित रह जायेगी कि देशी रियासतो की प्रजा को अपनी रियासतो मे स्वायत्त शासन के वे ही

अधिकार प्राप्त रहेंगे जो हिन्दुस्तान के दूसरे हिस्सों की जनता को प्राप्त रहेंगे। उनको भाषण लेखन तथा मुद्रण की स्वतन्त्रता और शुद्ध न्याय प्राप्त रहेगा।

शायद श्री जयप्रकाश का यह विश्वास नहीं है कि राजा लोग स्वेच्छा से अपनी निरंकुशता को त्याग देंगे। मुझे यह विश्वास है, एक तो इसलिये कि वे भी हमारी ही तरह भले आदमी हैं और दूसरे इसलिये कि मेरा शुद्ध अहिंसा की अमोघ शक्ति में सम्पूर्ण विश्वास है। अतः अन्त में मैं यह कहना चाहता हूँ कि क्या राजा महाराजा और दूसरे लोग सभी सच्चे और अनुकूल बन जायेंगे? तब हम खुद अपने प्रति—यदि हम में श्रद्धा है—और राष्ट्र के प्रति सच्चे बनेंगे। अधकचरी श्रद्धा से लक्ष्य कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता। अहिंसा का आरम्भ और अंत आत्म निरीक्षण में होता है।'

पूज्य बापू के आत्म विश्वास के अनुसार राजा महाराजाओं ने तो, समय आने पर, स्वेच्छा से केवल निरंकुशता का ही नहीं अपनी सत्ता का भी त्याग कर दिया। अब तो राष्ट्र का ही यह कर्त्तव्य रह जाता है कि वह राष्ट्रपिता की आशा राष्ट्रीय नेताओं के वचनों एवं नैतिक दृष्टिकोण के अनुसार समझौते का पूरा पूरा पालन करे।

विशेष रूप से जब कि हम 2 अक्तूबर 1968 से सारे विश्व में अपने पूज्य राष्ट्रपिता की जन्म शताब्दी मनाने जा रहे हैं—क्या राष्ट्र उस महामानव के वचनों की अवहेलना करके उनको सच्चे अर्थों में श्रद्धांजलि अर्पित कर सकेगा? क्या हम विश्व में यह कहलवाना चाहेंगे, जिस गांधी के सिद्धान्तों की ओर विश्व का जनमत आकृष्ट होकर विश्व शान्ति की आशा कर रहा है उसी गांधी का भारत गांधी के वचनों की अवहेलना कर रहा है?

प्रस्ताव की प्रतिक्रिया

समाचार पत्र और नरेश

हमारे देश के समाचार पत्रो ने भी नरेशो के प्रिवीपर्सों एव विशेषाधिकारो के विषय मे पर्याप्त रुचि ली है । कुछ प्रमुख पत्रो के मत बहुत सक्षिप्त रूप मे निम्न है :—

—द हिन्दुस्तान टाइम्स नई-दिल्ली

जून 26, 1967

प्रिवीपर्स नरेशो के राज्यो का एकीकरण निर्विघ्न बनाने और भारतीय सघ मे एक रूपता का जडाव करने के लिये कांग्रेस सरकार द्वारा किये गए पवित्र समझौते का अग है । जो मूल्य चुकाने का समझौता हुआ था, वह उस पूरे होने वाले कार्य के महत्व की तुलना मे कुछ भी नही था, जिसे सरदार पटेल ने पूरी तरह से समझा था ।

———

—द मेल, मद्रास

जून 26, 1067

कोई सरकार अपनी पवित्रता को हानि पहुँचाये बिना जनता के किसी भी भाग के साथ अपना वचन भंग नही कर सकती । दल की चुनाव सम्बन्धी बलि वेदी के लिये बलिदान के बकरे प्राप्त करने का प्रयास उसे स्वयं पीछे हटा देगा । सरकार ने किसी को जो कुछ देने का समझौता किया है, उसे उससे वंचित कर देने से कांग्रेस का समाजवाद सिद्ध नही होता और भूतपूर्व नरेशो

के प्रिवीपर्सों एव विशेषाधिकारो के उन्मूलन से कांग्रेस को एक भी अतिरिक्त मत (वोट) का लाभ नही होगा।

—द इडियन नेशन, पटना
जून 26, 1967

आज प्रिवीपर्स समाप्त किये जा रहे है। कल को सरकारी बौन्ड्स' और प्रमाण पत्र (सर्टीफिकेट्स) मे जमा धन भी जब्त हो जायेगा। क्या रुपये का अवमूल्यन 'पाकिट मारी' नही थी? किन्तु जनता क्या कर सकी? सरकार को यह अब भी सिद्ध करना है कि यह जनता के हित मे किया गया था। साम्यवादी उचित परिणाम के लिए उचित मार्ग ग्रहण करने का बहाना नही करते। किन्तु कांग्रेस तो राजनीति म नैतिकता की आवश्यकता पर बल देती रही है। यदि कांग्रेस अपने वचनों का पालन नही कर सकती तो नैतिकता कहाँ रही? तब कांग्रेस और साम्यवादी दल म अन्तर ही क्या रहा?

—द लीडर इलाहाबाद
जून 29 1967

क्या किसी ससद के लिये नरेशो के प्रिवीपर्सों सम्बन्धी धाराओ म परिवर्तन करना जैसा कि भविष्य म होने जा रहा है सम्भव होगा? सत्य तो यह है जो कांग्रेस को मानना पडेगा—कई राज्यो म यह बहुमत प्राप्त करने म असफल रही है क्योंकि मत दाताओ के बहुत बडे भाग ने उसके शासन को अयोग्य और भ्रष्ट समझा। लोग खाना सुरक्षा और कपडे उचित मूल्य पर चाहते हैं। मुख्य समस्या है जिस पर कांग्रेस को ध्यान देना चाहिए।

—द मेल, मद्रास
जुलाई 16 1967

मिस्टर पक अथानी ने लोक सभा म सकेत किया है उन्होंने कहा "भूटान और सिक्कम की रियासतों की स्थिति उन रियासतो के समान ही है, जिन्होंने सविलयन पत्र पर हस्ताक्षर किये हैं। यदि हम एक बात म निर्णय कर लें, हम दूसरे मामलों म उन्हें पटा लेंगे। केवल यही दो रियासतें नहीं हैं

जो कि यह शका करेंगी कि भारत सरकार का कहाँ तक विश्वास किया जाये? भारत सरकार उधार लेने की आदी है, बहुत से देशो की ऋणी है इस का कोई भरोसा नही है कि एक समझौता तोड़ दिया गया है तो दूसरे रखे जायेगे। नरेशो को दिये जाने वाले तुच्छ धन का, सरकार की प्रतिष्ठा के विचार से कोई मूल्य नही है।"

———

—द हिन्दू, मद्रास
जुलाई 28, 1967

बहुत से काग्रेसी नेता, अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की बैठक मे पिछले माह की सम्मति को दल का आदेश बतला कर और इसे सरकार पर दबाव देने की पवित्रता का आधार बतला कर, सरकार को इस मामले में निर्णय करने के लिये धकेल से रहे है।

घटनाओ का एक विभाजन—जिसमे श्री मोहन धारिया का प्रिवीपर्सो की समप्ति के लिये सशोधन पास होना बतलाता है कि उस माँग को अधिकार पूर्वक बहुत बड़े लोकमत का सहारा कहना, एक बहुत बड़ी धृष्टताहै। सशोधन (श्री० एस० के० पाटिल के अनुसार) चार के विरुद्ध सत्तरह मतो से पास हुआ। जिसका अर्थ है, मतदान मे, अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के कुल सदस्यो की सख्या के $\frac{1}{30}$ भाग से भी कम लोगो ने भाग लिया।

सविधान की पवित्र धाराओ और पूर्व ऐतिहासिक घटनाओ का, जिनके फलस्वरूप भारतीय सघ मे नरेशो की रियासतो का सविलयन हुआ, आदर किये विना अधिकार पूर्वक यह कहना कि इस तरह का नियम विरुद्ध निर्णय सरकार को वाध्य करता है, (दल के पिछले भाग पर) दल की दुम पर सरकार व ससद को आज्ञा देने का अधिकार प्रतिपादन करता है।

———

—वीकेन्ड रिव्यू, नई दिल्ली
जुलाई 29, 1967

जब सिक्कम के चोग्याल की, भारत—सिक्कम सधि के पुनः सशोधन के लिए बार-बार प्रार्थनाओ का सामना करना पड़ा, भारत ने बहुत उचित रूपसे निवेदन किया कि चोग्याल सधि की धाराओ का सम्मान करते हैं। इस विषय मे वह (भारत) विनीत नही हुआ। भारत का सिक्कम के प्रति अपने सिद्धांत पर जमे रहना बहुत निर्वल हो जायेगा, यदि उसने पहले के "प्रिसंज चैम्बर"

के सदस्यो के साथ हुये, समझौतो को उनकी स्पष्ट सहमति के बिना बदलने का इरादा किया।

—द मेल, मद्रास
जुलाई 31 1967

वास्तव म विधि मत्रालय का सम्बन्ध इस विषय म केवल कानूनी दृष्टि कोण से है, उसका नतिकता से कोई सबन्ध नही है। किन्तु कोई सरकार बिना गम्भीर हानि किये हुए, नतिक कत्तव्यो का त्याग नहीं कर सकती।

—द लीडर, इलाहाबाद
अगस्त 3, 1967

यदि हर समय दिये हुये वचनो को लपेटा गया तो राजनीतिज्ञ राज नतिक साधनो को नतिक सिद्धातो स अधिक आवश्यक बना दग और वचनो की पवित्रता जिसकी कि निश्चय पूवक कल्पना की गई है 'सारभूत नैतिकता' का नाम दिया गया है, किसी प्रकार के भी समझौते कागज के टुकडो के अति रिक्त कुछ नही रह जायेंगे, जिनको कि वे काम निकल जाने पर फक देंग।

श्री० सी० राजगोपालाचाय
—स्वराज्य, मद्रास
अगस्त 5, 1967

जिस सरकार ने वाणिज्य का अतिरिक्त अविनय ग्रहण किया हो और अन्तर्राष्ट्रीय ऋण के आधीन हो गई हो, वह अपने मुकुट पर से इस आदश वाक्य—सत्यमव जयत सत्यम्—को वचन एव काय म, ईमानदारी के साथ उपेक्षा नही कर सकती।

द कैपीटल, कलकत्ता
अगस्त 10 1967

यह बडी मनोरजक बात है जिन राज्यो के मुख्य मन्त्रियो के सामने शासको की समस्या है वे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के इस प्रस्ताव का अनुमोदन नही कर रहे है। मध्य प्रदेश म काग्रेस मत्रिमडल के क्षय होने के पहले भी, मुख्य मत्री श्री द्वारका प्रसाद मिश्रा इसके विरोध म थे। यही बात गुजरात के मुख्य मत्री श्री हितेन्द्र देसाई की है। राजस्थान के मुख्य मत्री श्री सुखाडिया को भय है—कि यह कदम उनके लडखडाते मत्रिमडल को कहीं उलट ही न दे। यह स्वीकृत तथ्य है कि काग्रस के उच्च श्रेणी के नेता

प्रिवीपर्स के उन्मूलन के विषय मे उत्सुक नही थे, वे तो इस धमकी के द्वारा शासको को केवल झुकाना चाहते थे। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी यह नीति निशाने पर सही नही बैठी।

———

द हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली

अगस्त 12, 1967

काग्रेस की वर्तमान चित्त वृत्ति के अनुसार उसके विषय मे वचन और प्रतिज्ञाओ के पालन की बात करना ही व्यर्थ है। यहाँ तक कि श्री चह्वाण भी, जो प्रिवीपर्सो के उन्मूलन का कदम उठा रहे है, किसी तरह से घुमा फिरा कर यह स्वीकार करते हैं कि काग्रेस ने शासको से वायदा किया है जो कानूनी और नैतिक रूप से सही है। किन्तु उनका तर्क यह है कि काग्रेस ने विशाल जनता से भी तो वायदा किया है जिसकी सख्या राजाओ से दस लाख गुनी है।

यह सही है। किन्तु जनता से किया गया वायदा क्या है? श्री चह्वाण ने यह नही स्पष्ट किया, किन्तु इस विषय मे उनके मस्तिष्क मे जो बात स्पष्ट है वह यह है, कि काग्रेस ने उस जनता के जीवन स्तर को कुछ सरल बनाने का वायदा किया है, जो कि काग्रेस के 20 वर्ष के शासन मे अब तक गरीबी की चक्की मे पिसती हुई कराह रही है। गणना के अनुसार वास्तव मे उसकी स्थिति इन 20 वर्षो मे और अधिक खराब हो गई है।

किसी भी विचार से यह स्थिति बडी अपमानजनक है। मुझे आश्चर्य है, क्या श्री चह्वाण भी यह विश्वास करते है कि उनके दल द्वारा राजाओ के प्रति कर्त्तव्य पालन न करने का जो आचरण आरम्भ किया जा रहा है, उससे चार करोड रुपये वार्षिक की बचत जनता से किए गए वायदे को पूरा करा सकेगी?

———

द इंडियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली

अगस्त 15, 1967

काग्रेस के सभी नेता प्रिवीपर्सो के उन्मूलन के पक्ष मे नही है। उदाहरण के लिये, श्री मुरार जी देसाई ने इस प्रस्ताव का विरोध किया है। यद्यपि काग्रेसी होने के नाते वह अपने आपको अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के निर्णय को मानने के लिए बाध्य समझते है। तब भी यह भली भाँति विदित

है कि यह निर्णय समुचित सोच विचार कर नहीं किया गया था, बल्कि यह तो कुछ चलते फिरते मतों के फल स्वरूप ही है। कांग्रेस दल के निजी दृष्टि कोण से भी उस पर पुनर्विचार की अत्यन्त आवश्यकता है। श्री देसाई और अन्य कांग्रेसी नेताओं को जो उन्हीं के जैसे विचारों वाले हैं अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को अपनी आगामी बैठक में इस समस्या पर अधिक विचार करने का जोर देना चाहिए। यह सम्भव है यदि इस मामले को फिर से उठाया जाये तो दिल्ली की सभा में शीघ्रता से पारित हुआ प्रस्ताव समाप्त कर दिया जाये। ऐसी बहुत सी अन्य समस्यायें हैं जिन पर सरकार व देश को शीघ्र ही ध्यान देना चाहिए। यह सत्य है कि प्रिवीपर्स का रहना या न रहना, जिसकी कुल राशि पाँच करोड वार्षिक है उन प्रमुख समस्याओं में से नहीं है।

द हिन्दू, मद्रास

अगस्त 17 1967

अनेक कांग्रेसी संसद सदस्यों द्वारा अपने हित में महत्त्वपूर्ण समर्थन पाने पर भी (जैसा कि संसद में हुए अभी हाल ही के वाद विवादों से स्पष्ट है) यह आश्चर्य की बात नहीं है कि नरेशों ने स्वयं एक सावधानी बर्ती है और अपने प्रिवीपर्सों एवं विशेषाधिकारों के लिए दी जाने वाली धमकी के विरोध में कोई संघर्ष भी खड़ा नहीं किया है। इसमें संदेह नहीं उन्होंने एक समिति बनाई है जो कि उनके भूतकालीन नरेश मंडल (चैम्बर आफ प्रिंसेज) के समान ही हो सकता है किन्तु अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी से अपने इस निर्णय पर पुनः विचार करने के लिए उन्होंने अपील बहुत सोच विचार कर बड़े संयमित शब्दों में की है। 600 सदस्यों वाली अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की घोषणा 4 के विरुद्ध 17 मतों द्वारा अधिवेशन के अंतिम दिन जिस नाटकीय ढंग से प्रस्तुत की गई है उसके गुण व दोषों पर पुनर्विचार करके अधिक स्वस्थ्य निर्णय लिया जा सकता है।

द मेल, मद्रास

अगस्त 22 1067

यह भली भाँति विदित है, नरेशों द्वारा राष्ट्रीय एकता के हित में अपनी सत्ता, अधिकारों एवं राजस्व त्यागने के मूल्य को प्रिवीपर्सों के रूप में सरकार ने बहुत थोड़ा समझा था।

यदि उस समय वह (सरदार) सविधान मे ऐसी धारा चाहते थे, जिसके अनुसार नरेशो के साथ किए गये समझौते न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर रहे तो उसका कारण यही था कि उन्हे यह तनिक भी पसद नही था कि भावी सरकार या कोई नागरिक नरेशो को कानूनी मुकद्दमो मे फसा कर तग करे। किन्तु विधि मत्रालय ने इस धारा की जो व्याख्या की है वह बिल्कुल उससे उल्टी है जो वास्तव मे सरदार पटेल ने इस धारा के विषय मे सोचा था। विधि मत्री चकित करने वाले वक्तव्य देते रहते है, "रियासतो के लिए सघ में मिलने के अतिरिक्त कोई चारा ही नही था और इसका प्रिवीपर्स से कोई सम्बन्ध नही है।" इसके विपरीत इसका (प्रिवपर्सो) उनसे (सघ मे विलय से) पूरा सम्बन्ध है। विलीनीकरण तो प्रिवीपर्सो एव विशेषाधिकारो के बदले में किया गया था और इनके लिए नरेशो को गारण्टी दी गई थी। चूंकि अब नरेश शक्ति हीन है, इसलिए सरकार इन समझौतो को तोड सकती है क्योकि उसके इस कार्य के लिये उसे कोई दण्ड नही दे सकता। किन्तु बुद्धिमानी तो इसी मे है कि कानून और नैतिकता को अभिमन्त्रित न किया जाये क्योकि ये दोनो पूर्ण रूप से नरेशो के पक्ष मे है।

द इंडियन ऐक्सप्रैस, नई दिल्ली

अगस्त 23, 1967

श्री मैनन ने अपने विचार प्रकट किए है कि नरेशो के साथ हुए समझौते एव प्रसविदाये सविधान लागू होते ही प्रभाव हीन हो गई। केन्द्रीय विधि मत्री के लिए सबसे उचित बात तो यह है कि वह शीघ्र से शीघ्र इस बात को समझ ले कि उनका यह कहना बडी गम्भीर उलझने उत्पन्न करने वाला है।

अगर श्री मैनन का यह कहना सही है, प्रसविदाय और समझौते 26 जनवरी 1950 को प्रभावहीन हो गये तो पाकिस्तान व अन्य देश इस बात को बडी खुशी से ग्रहण करेंगे—तब वे इस पर वाद-विवाद कर सकेंगे कि जम्मू व कश्मीर के महाराजा हरीसिंह ने जिस सविलयन पत्र पर हस्ताक्षर किए है वह सविलयन पत्र अपना महत्त्व 17 वर्ष पूर्व ही खो चुका है। वास्तव मे यह मामला इतना सरल नही जितना कि विधि मत्री समझ रहे है। जो कुछ श्री मैनन ने सोमवार को कहा है उसका विवेचन इतनी उलझने उत्पन्न करने वाला है कि केन्द्रीय मत्रिमडल को कि इस प्रश्न के रूप

पर अपना सम्मिलित मस्तिष्क लगाने में समय नहीं खोना चाहिये । भारत सरकार के लिए उस सिद्धान्त पर अमल करना अनुत्तरदायित्वपूर्ण और अपवादकारक हो सकता है जिसके बल पर कश्मीर का भारतीय संघ में सांविधानिक एवं कानूनी अधिकार टिक रहा है ।

द पायोनियर, लखनऊ

अगस्त 24, 1967

यदि सरकार प्रिवीपर्सों के उन्मूलन लिए कानूनी विजय प्राप्त कर लेती है तब भी ऐसा करना क्या उचित है ? मुख्य विषय कानूनी नहीं है बल्कि सम्मान और ईमानदारी का है । सरकार ने जो वचन दिए हैं उन्हें पूरा करने के कर्तव्य से वह बंधी हुई है । वास्तव में देश के संविधान का निर्माण कुछ विशेष प्रकार के पवित्र वचनों पर ही आधारित है एक वचन धार्मिक अल्पसंख्यकों को दिया गया था और यह घोषित किया गया था कि भारत का अपना कोई राज्य धर्म नहीं होगा । सरकार ने दूसरा वचन पौर सेवा कर्मचारियों को उनकी सुविधा के लिए दिया था । तीसरा वचन नरेशों को दिया गया था । क्या सरकार के लिए 20 वर्ष बाद इन पवित्र वचनों में से किसी को तोड़ना उचित है ? यह तर्क कि सरकार का समाजवाद से गठबंधन हो चुका है इसलिए नरेशों के विशेषाधिकार छीन लेने चाहिए कोई अच्छा तर्क नहीं है । इसके अतिरिक्त यह आश्चर्य की बात है कि सरकार 20 वर्षों तक तो इस विषय में चुप रही और अचानक ही उसने यह अनुभव कर लिया कि नरेशों के विशेषाधिकार सत्ता धारी दल के समाजवादी सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं ।

समाचार पत्र (विपक्ष में)

प्रिवीपर्सों एवं विशेषाधिकारों को केवल भारत सरकार की उदारता समझने वाले, कम पढ़े लोगों की तो बात ही क्या ? हमारे यहां के कुछ प्रमुख समाचार पत्रों तक का यह हाल है । कभी कभी तो इन पत्रों की सूझ बूझ पर दया आती है—बिना सोचे समझे नरेशों के विरुद्ध कुछ न कुछ ऊल जलूल लिखते रहकर ही वे अपने विचारों की प्रगतिशीलता का सिक्का जमाना

चाहते है :—

दिल्ली के एक हिन्दी दैनिक ने अपने मई 1968 के किसी अक मे एक कार्टून छापा था, जिसमे भारतीय नरेशो को अपने अपने हाथो मे भिक्षा पात्र लिये हुए गृह मत्री के सम्मुख प्रिवीपर्स की भिक्षा मांगते दिखलाया गया था।

इस कार्टून के विपय मे स्वय इस पत्र के पाठको ने इसकी निन्दा की है एव इसे असगत तथा अविवेकपूर्ण कहा है।—

इसी पत्र ने 22 जुलाई 1968 के पत्र मे अपने 'विचार प्रवाह' कालम के अन्तर्गत, राजाओ की अपील नामक शीर्षक से इस विपय मे अपने विचार प्रगट किये।

इन पंक्तियो को पढकर यह समझ मे नही आता—हम इसे पत्र की इस विपय मे अनभिज्ञता समझे ? भ्रम समझे ? या जान बूझ कर पाठको को वहकाने का प्रयास समझे ?

इसका निर्णय, विचार प्रवाह की पक्तियो और उनके यहाँ दिये गये उत्तरो को पढकर, पाठक स्वय कर ले :—

राजाओं की अपील

राजाओ की ओर से एक वार फिर यह अपील की गई है कि भारत सरकार प्रिवीपर्स और विशेपाधिकारो के सम्वन्ध मे अपने वचनो और आश्वासनो का पालन करे, कोई शक नही कि सरकार ने वचन और आश्वासन दिये थे, परन्तु कोई क्या इसका यह अर्थ ले सकता है कि वे शाश्वत काल के लिये थे ? यह वात भूलने की नही कि जिस सरकार ने यह वचन दिये थे उसने अपना लक्ष्य समाजवादी समाज की स्थापना नही स्थिर किया था, तव परिस्थितियाँ और थी और जमाने के साथ वे निरन्तर वदल रही है, ऐसी सूरत मे नयी परिस्थितियो मे वे पुरानी वाते कैसे कायम रखी जा सकती है जो असमानता और सामत शाही की प्रतीक है, इसलिये राजाओ ने सभ्य समाज का नाम लेकर सरकार के वचनो और आश्वासनो की जो दुहाई दी है उसका कोई अर्थ नही है।

फिर उनका यह कहना तो और भी विचित्र लगता है कि भारत को एक वनाने के लिये उन्होने जो सहयोग दिया उसके महत्व को नही समझा जा रहा। क्या वे समझते है कि उन्होने ऐसा करके वहुत अहसान किया ? उस समय जो परिस्थितियो थी उनमे क्या वे इसके विपरीत आचरण कर सकते

विशेषाधिकारों की समाप्ति से यह एक दम आकाश से उतर कर हमारे सामने खड़ा हो जाएगा ?

समाजवादी समाज का ढोल पीटने वाले पहले स्वय को तो समाजवादी सिद्धांतो के अनुकूल ढाल कर दिखलाएँ ।

परम पूज्य बापू के शब्दों मे —

'समाजवाद पहले समाजवादी से शुरू होता है । यदि आरम्भ करने वाला स्वय ही शून्य हो तो परिणाम भी शून्य ही होगा ।

फिर उन क्षतिपूर्ति देती रही।

ऐसा प्रतीत होता है, पत्रकार महोदय ने सविधान सभा में दिए गए वक्तव्यों के द्वारा सरदार पटेल आदि नेताओं के विचार नही पढे और न उन्होंने उस समय की परिस्थितियों पर ही कभी ध्यान किया है नही तो वह नरेशों के इस विरुद्ध प्रकार की भाषा का प्रयोग कदापि न करते ।

यदि नरेश चाहते तो वे भी मुस्लिम लीग की तरह अंग्रेजो से भारत व पाकिस्तान से पृथक, राजस्थान की माँग कर सकते थे । और अंग्रेजों को नैतिक दृष्टि से यह मानना ही पडता । कदाचित अंग्रेज चाहते भी यही थे।

प्रिवीपर्सों एव विशेषाधिकारों को भारत सरकार की उदारता कहने वाले केवल उसकी कीमत ही जानते हैं इसका वे मूल्य नही समझते ।

यह भी छीन लेती ।

यह कोई तर्क सगत बात नही मालूम पडती । क्या इसके उत्तर में यह नही कहा जा सकता कि अंग्रेजों ने जिन भारतीय राजाओं व नवाबों के राज्य लिये थे यदि वे उनके वंशजों को ही राज्य वापस कर जाते तो क्या होता ?

सबसे बडी सन्तुष्ट रहना चाहिये ।

यह भी समझने की भूल है यह प्रश्न केवल प्रिवीपर्सों एव विशेषाधिकारों का ही नहीं — प्रश्न है सिद्धांतो का विश्वास—अविश्वास का नैतिकता—अनैतिकता का न्याय अन्याय का भारत सरकार ने प्रिवीपर्सों एव विशेषाधिकारो को समाप्त करने का जो रवैया अपनाया है, वह अनैतिक एव तानाशाही का मार्ग है । यह तो लोकतन्त्र के लिए सामन्तशाही से कहीं अधिक भयकर है ।

अहिंसा कांग्रेस का मूल सिद्धांत था, किन्तु उसने शासन की बागडोर हाथ में लेते ही अहिंसा को केवल नीति के रूप में प्रयोग करना प्रारम्भ कर

दिया था। किन्तु अब तो ऐसा प्रतीत होता है, वह अहिंसा को नीति रूप मे भी प्रयोग करना नही चाहती, अब तो वह केवल हिंसा के द्वारा ही अपनी सत्ता को अटल बनाये रखने पर उतारू हो चुकी है।

किसी लोकप्रिय पत्र मे ऐसे एक पक्षीय एव उथले विचार पढकर आश्चर्य व दुख होता है।

समाचार पत्र लोक तन्त्र की रीढ होते है। उन्हे अपने विचार प्रकट करते समय केवल सरकारी नीतियो का मुँह नही ताकना चाहिए, और न किसी दल विशेष से ही कोई लगाव रखना चाहिए। उनका उद्देश्य तो निपपक्ष और निर्भय हो कर जनता का हित व उसकी रुचि स्पप्ट करने का होना चाहिए।

आज जन साधारण को नरेशो के प्रिवीपर्सो एव विशेषाधिकारो की समाप्ति मे कोई रुचि नही है। और न वे उसमे अपना कोई विशेष हित ही देखते है। वास्तव मे सरकार को यदि समाजवादी समाज की स्थापना करना ही है और वह उसके लिए मार्ग प्रशस्त करना चाहती है तो वह अपनी शक्ति और अधिकारो का प्रयोग सबसे पहले समाज की नस-नस मे व्याप्त होते जा रहे भ्रप्टाचार के विप को समाप्त करने मे क्यो नही करती? यही विप घूँस खोरी, जमा खोरी, काला बाजार, तस्कर व्यापार एव अनुशासनहीनता आदि अनेक रूपो मे अपनी जडे फैलाता जा रहा है। समाज निर्बल होकर समाजवादी समाज से कोसो दूर भागता चला जा रहा है।

राजनीतिज्ञ

संसद के बाहर

श्री कन्हैयालाल माणिक लाल मुन्शी

प्राण जाहुँ बरु वचनु न जाई

गांधीजी को तुलसी की निम्नलिखित दो पक्तियो से विशेष अनुराग था और वह उन्हे आम तौर से दोहराते रहते थे।

रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्राण जाहु बरु बचनु न जाई ।।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद सविधान सभा (कान्स्टीटुए ट असेम्बली) ने स्वदेश वासियो का प्रतिनिधि सभा के रूप म अपने देश के सविधान का निर्माण किया और उसकी आधारशिला को दृढ करने के लिए स्वदेशवासियो को कुछ वचन दिये। प्रथम विविध धर्मों के अल्पसख्यक अनुयायियो को यह वचन दिया गया कि भारतवष किसी एक विशिष्ट धम म आस्था नही रखेगा तथा किन्ही दो धर्मों म कोइ अन्तर नही मानेगा अर्थात् यह धमनिरपेक्ष राज्य होगा और सब धर्मों को समान सम्मान देगा। सविधान सभा द्वारा दिय गए इस आश्वासन को सविधान म लिख कर प्रकट बना दिया गया। द्वितीय सिविल सेवा के सदस्यो को जिन्होने स्वाधीन भारत के काम काज यथावत् चलाने का दायित्व उठाया था विश्वास दिलाया गया कि उनकी सेवा नियमावलि में कोई भद नही किया जाएगा तथा उनके वतन आदि में कोई कटौती नही की जाएगी। तृतीय भारत म फली सकडा रियासतो के तत्कालीन शासको का यह वचन दिया गया कि उन्हे प्रिवी-पस मिलती रहेगी तथा उनके विशेषाधिकार सुरक्षित रहेंगे।

भारत की इन सैकडा बिखरी रियासतो का भारत गणराज्य म विलय अर्थात भारत की इस अद्वितीय एकता के लिए तीन चीजें जिम्मेदार हैं—1 सरदार पटेल की तीक्ष्ण बुद्धि और असामान्य सूझ-बूझ 2 वी० पी० मेनन का व्यवहार कुशलता तथा 3 इन रियासतो के शासको की देशभक्ति उदारता और दूरदर्शिता। उस समय इन शासको को दी जाने वाली प्रिवी पस की राशि छ करोड रुपय स भी कम बनी थी जो प्रत्येक शासक के मरने के साथ कम होती जाती थी। इस प्रकार यह राशि घट कर पाच करोड रह गी तथा अब और भी घट गई एव तीन करोड से कुछ ज्यादा है। अर्थात यह राशि विशालाकार सरकारी खच म सागर म बूद के समान है।

इस प्रश्न के आर्थिक पहलू को छोड दीजिए जो कम महत्वपूर्ण है। लेकिन दूसरे पहलू को देखिए जो भारत की प्रतिष्ठा की दृष्टि स भारत के लिए जीवन मरण का प्रश्न है। प्रिवीपस हमारे राष्ट्र के सविधान की नींव म लगी हुई अनेकों ईंटो म एक ईंट है जिसके निकाल देने स हमारे सविधान के भवन के भरभरा कर गिर जाने की आशका है– तुरन्त नहीं, कुछ समय बाद। प्रिवीपस के उन्मूलन प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने से भारत की प्रतिष्ठा मिट्टी

मे मिल जाती है, भारत के वचन का महत्व दो कौडी रह जाता है। सच पूछो तो यह कदम भारत के जीवन वृक्ष की जड को खोदने के बराबर है।

जो लोग आज इस प्रस्ताव के जन्म दाता एव पोषण कर्ता है, वे एक बात भूल जाते है कि 1947 मे ऐसी अनेक शक्तियाँ थी जो भारत को एक सगठित एव विस्तृत राष्ट्र के रूप मे नही देखना चाहती थी, जो इस दिशा मे किए गए भारत के प्रत्येक कदम को विफल करने के लिए रात-दिन प्रयत्नशील थी। .. ..
....

[उस समय प्रत्येक भारतीय रियासत को छूट थी कि वह चाहे भारत मे मिले और चाहे पाकिस्तान मे।]

सरदार पटेल ने जब सब रियासतो को भारतीय गण राज्य मे मिला लिया और उन रियासतो के भूतपूर्व शासको को प्रिवीपर्स मिलनी शुरू हो गई तो काग्रेस दल के अनेक सदस्यो ने सरदार से इस विषय पर चर्चा की, कि प्रिवीपर्सो को बन्द कर दिया जाए क्योकि रियासते तो भारत मे मिल चुकी थी और उनके वापस जाने का कोई प्रश्न ही नही उठता था। सरदार पटेल ने इन आपत्ति उठाने वालो को शान्तिपूर्वक सुना और अचानक उनसे प्रश्न किया, "क्या आपको स्वराज मिला ? क्या आपने रियासतो की प्रभु सत्ता को समाप्त किया ?

क्या आपने इन भूतपूर्व शासको को कुछ वचन दिये और उन्हे सविधान मे लिखा ? मुझे यह नही मालूम कि अन्य लोग जिन्होने यह वचन दिये थे, आज क्या सोचते है। आप चाहें तो उनके पास जा सकते है। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मै इन दिये वचनो का पूरी तरह पालन करूँगा।"

आज दुर्भाग्य से सरदार पटेल नही हैं जो दिये वचन से मुकरने वाले इन लोगो को डाँट कर चुप करा देते। आज जवाहरलाल भी नही हैं जिनका अन्तर्मन इस प्रकार के विश्वासघात से आतकित हो उठता। आज गाँधीजी भी नही है जो हमे समझाते कि अपने वचन से मुकरना और आध्यात्मिक मृत्यु मे कोई अन्तर नही है।

यदि आज के निरकुश शासक, लोकतन्त्र को जीवित रखना चाहते है तो उन्हे धर्म और कानून के बीच भयकर गड्ढे को पहचानना होगा और इसमे

गिरने से बचना होगा। सरदार पटेल को भी निरंकुश शासक कहा जाता है लौह पुरुष कहकर सम्बोधित किया जाता है तथा बहुत निमम और कठोर बतलाया जाता है किन्तु उनके शब्दों या आज के निरंकुश शासकों ने शब्दों से तालिया और पहचानिये। सरदार पटेल को इस बात का ज्ञान था कि राष्ट्र की सुस्थिरता की आधारशिला धर्म है न कि विधेयक प्रतिबन्ध या कानूनी मत। हमारे दो राष्ट्रीय महाकाव्य रामायण और महाभारत जीवन के विविध पक्षों का निरूपण करते है और उनका आदर्श रूप प्रस्तुत करते है। किन्तु उनका मूल सन्देश यही है कि अपने दिये वचन का हर कीमत पर पालन करना चाहिए। अपने वचन की रक्षा के लिए राज्य सिंहासनों को छोड दिया गया तथा बनवास भी स्वीकार किया गया। आज हम उस नैतिक स्तर को सामने रखना है जिसका हमने 1947 में प्रदर्शन किया था। उस नैतिक पक्ष को भूलने के कारण हम काफी नुकसान सहना पडा है किन्तु अब भी समय है कि हम अपने मे अपेक्षित सुधार कर ले तथा और भयानक गलतियां न करें।

संविधान की धारा 362 की अवहेलना करना, उसके विपरीत कार्य करना तथा धारा 363 की शरण लेना मात्र एक कानूनी छलना है प्रवचना है, आत्मघात है। कितने आश्चर्य की बात है कि विधि मन्त्री ने भी प्रिवी पर्सों के उन्मूलन के पक्ष म संविधान की धाराओं को तोडने मरोडने का ढोंग रचा है। यह ठीक है कि पंच समझौते की किसी धारा के विषय में मतभेद होने पर पंचों का निर्णय मान्य होता है तथा उस मतभेद को अदालत म नही ले जाया जा सकता, किन्तु यदि पंच समझौता ही किसी पक्ष द्वारा रद्द कर दिया जाए तो अदालतों को पूरा पूरा अधिकार है कि वे उस समझौते पर विचार कर और अपना निष्पक्ष निर्णय दें।



चक्रवर्ती श्री राजगोपालाचारी।

नरेशों के साथ किए गए समझौते काग़ज के टुकडे नहीं, पावन प्रतिज्ञा-पत्र हैं

अपनी अर्थव्यवस्था को सुदृढता एव सुस्थिरता प्रदान करना हमारा प्रथम धर्म है। इसके लिए हमे अपने राष्ट्रीय व्यय मे प्रत्येक सम्भव कटौती तथा अपने राष्ट्रीय उत्पादन मे प्रत्येक सम्भव वृद्धि करनी चाहिए। सार्वजनिक

व्यय के अनावश्यक पक्षो को समाप्त करना, सैनिक व्यय को कम करने के लिए प्रबुद्ध विदेश नीति का निर्धारण करना, राजकीय उद्यमो से लाभपूर्ण प्रतिफल प्राप्त करने के लिए उनमे सुप्रवन्धता एव कार्यकुशलता प्रविष्ट करना आदि अनेक मार्गो के अनुसरण से हम उपरिवर्णित लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते है। किन्तु इसके लिए नरेशो के 'प्रिवीपर्स वन्द करना अर्थात् अपने दिये वचन को तोड़ना किसी भी दृष्टि से सगत नहीं है।

जीवन मे वचन की पावनता सर्वोपरि है। उसको किसी भी रूप मे भग करना जघन्य पाप है। इससे न केवल अपने हृदय की सात्त्विकता विनष्ट होती है अपितु दूसरो की दृष्टि मे अपनी प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार समझौता दो पक्षो के बीच हुआ ऐसा पावन सम्बन्ध है जिसकी मर्यादा अनुल्लघ्य है, यह दो पक्षो को जोडने वाला ऐसा पवित्र बन्धन है जिसके पालन करने मे ही जीवन का आनन्द है। यह बन्धन दोनो पक्षो के लिए समान रूप से मान्य है इसको तोडने का किसी पक्ष को अधिकार नही है। और यदि एक पक्ष इसका पूर्णरूपेण सम्मान कर रहा हो तो दूसरे पक्ष द्वारा इसकी पावनता भग करने का विचार भी मन मे लाना अपराध है।

अयोध्या नरेश दशरथ ने अपने वचन का सम्मान करने के लिए राम जैसे आदर्श पुत्र के वियोग का दारुण दुख सहन करना भी स्वीकार किया। राम ने अपने पिता के वचन की मर्यादा को अभग रखने के लिए युवराज-पद त्याग कर चौदह वर्ष वन मे वास किया। **'प्राण जाहुँ वरु वचनु न जाई' इस देश का आप्त वाक्य है, इस देश के वासियो के जीवन का निर्देशक मन्त्र है, भारत के पचास करोड़ लोगो के प्राणो का मूल मन्त्र है।** राम को भी अनेक लोगो ने बहकाने का असफल प्रयास किया था कि वह, युवा पत्नी के सौन्दर्य बन्धन मे बधे वृद्ध पिता के दिये वचन को न माने किन्तु राम ने इन कुतर्को की ओर तनिक भी ध्यान न दिया और वचन को पावनता को अमरता प्रदान की।

भारत के सामने आज इसी घटना की पुनरावृत्ति है। देश को स्वाधीनता दिलाने वाले एव देश के सविधान का निर्माण करने वाले हमारे पूज्य नेताओं ने देश के भूतपूर्व नरेशो के साथ समझौता किया, उनकी रियासतो को भारत अधिराज्य मे विलय करके उन्हे प्रिवी पर्स देते रहने का वचन दिया, अपने वचन को समझौते का रूप दिया और उसे सविधान का सरक्षण प्रदान किया। इसलिए **नरेशो के साथ किये गए ये समझौते कागज के टुकड़े नही, पावन**

प्रतिज्ञा पत्र हैं जिनमे एक दो को नहीं अपितु पचास करोड भारतीयो की वाणी प्रतिध्वनित है, जिनके भग होने से एक दो की नहीं बल्कि पचास करोड भारतीयो की प्रतिष्ठा धूल मे मिलती है।

प्रिवी पर्सो के उ मूलन से न तो समाजवाद आता है और न आय वषम्य मिटता है हाँ, वचन निर्वाह के लिए विश्व प्रसिद्ध भारत के मस्तक पर कलक का अमिट धब्बा अवश्य लगता है। ठीक है कि सविधान मे छोटे मोटे परिवतन सशोधन करने का ससद् को अधिकार है किन्तु क्या पचास करोड जनसख्या वाले विशाल क्षेत्रीय एव विश्व सम्मानित भारत की प्रतिष्ठा को धूल म मिलाने का भी ससद् को अधिकार है ? यह अधिकार ससद् को नही है यह तो ससद् म बठे तथाकथित समाजवादियो का अपने मतदाताओ के साथ विश्वासघात है, यह तो मुट्ठी भर लोगो का पचास करोड लोगो की प्रतिष्ठा स खेलना है यह तो महात्मा गाधी एव सरदार पटेल की आत्माओ को क्लेश पहुँचाना है।

नरेशो के प्रिवी पस ब द करने का कुविचार नतिकता का हनन है भारत की धमप्राणता की हत्या है देशवासियो क साथ विश्वासघात है।



चक्रवर्ती श्री राजगोपालाचारी

मूर्ख गुड की डली न दे, भेली दे

किये हुए अनुबन्ध को ईमानदारी के साथ पूरा करना केवल सद्नीति ही नही है अपितु नतिकता की दृष्टि स भी बहुत जरूरी है और यदि अनुबन्ध किसी सरकार ने किया हो और वह भी काफी सोच विचार के बाद तब तो उसका पूरा करना और भी जरूरी है। हाँ सरकार भी वह जिसने वाणिज्य एव व्यापार म भाग लेना शुरू कर दिया हो तो उसके लिए अपने अनुब धो का पूरा करना अपनी अन्तर्राष्ट्रीय साख को बनाए रखने की दृष्टि स भी अनिवार्य है। और यदि उस सरकार का राजकीय चिन्ह सत्यमेव जयते हो तो उसके लिए तो मन स वचन स कम स सत्य का पालन करना अनिवार्य है क्योकि यह केवल उसकी अपनी प्रतिष्ठा का ही प्रश्न नही है अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र की प्रतिष्ठा का प्रश्न है, 'प्राण जाहु बरु बचनु न जाई' आप्त वाक्य का पालन करने वाले धमप्राण भारत की प्रतिष्ठा का प्रश्न है।

जब पोर्शिया ने शाइलाक से दयावान् होने के लिए कहा तो उसने पूछा, क्यो ? मुझे दयावान होना क्यो जरूरी है ? तब हमारे लिए ही अपने वचन

का पालन करना क्यो जरूरी है ? किन्तु जो प्रश्न शाइलॉक ने किया, वह कोई सरकार नही कर सकती। वह केवल सविधान के अनुसार ही आवश्यक नहीं हैं कि सरकार अपनी कथनी और करनी में सत्य का पालन करे अपितु यह तो हमारी परम्परागत निधि है, हमारी संस्कृति का मूल है। श्री के० सन्तानम ने गाँधीजी का उदाहरण ठीक ही उद्धृत किया है। भारत ने विभाजन के समय पाकिस्तान को पचपन करोड रुपये का वचन दिया था किन्तु सरदार वल्लभभाई इस राशि को देने के पक्ष मे नही थे। सरदार पटेल का तर्क अपनी जगह बडा अकाट्य था कि पाकिस्तान इस धन से अपनी सैनिक शक्ति दृढ करेगा और बाद मे भारत के लिए मुसीबत बन जाएगा। किन्तु गाँधी जी पर राष्ट्रीय सुरक्षा-विषयक इस तर्क का भी कोई प्रभाव नही पडा क्योकि यह 'सत्य' के विरुद्ध था। वचन देकर मुकर जाना गाँधीजी को असह्य था, इसलिए उन्होने यह धन दिलवा कर छोडा। उस समय लोग गाँधीजी की इस बात से सहमत नही हुए किन्तु बाद मे उन्हे इस घटना के ऐतिहासिक महत्त्व को स्वीकार करना पडा।

ईमानदारी सदा लाभकारी सिद्ध होती है। हो सकता है कि ईमानदारी का फल तुरन्त न मिले किन्तु इसका फल मिलता जरूर है और मीठा फल मिलता है। भारत इतनी विशाल और दीर्घकालिक योजनाए तैयार कर रहा है, इसलिए उसके लिए तो ईमानदारी का व्यवहार करना और भी जरूरी है। यदि अपने दिये गए वचन या किये गए अनुबन्ध को पूरा करने मे राजकोष पर कुछ खर्चा भी पडे, तब भी हमे पीछे नही हटना चाहिए। या यह केवल समाजवाद के प्रति हमारा प्रेम है ? किन्तु जिस समाजवाद की नीव वायदो और अनुबन्धो के खून पर रखी जाएगी, वह समाजवाद भी अधिक दिन नहीं टिक पाएगा। सरकार के बदनीयत होते ही सारा राष्ट्र बदनीयत हो जाता है और लोकतन्त्र की नीव खुद जाती है।

जब मैं भूतपूर्व शासको की वकालत करता हू तो कुछ लोग मुझे प्रतिक्रियावादी कह सकते हैं किन्तु किसी शोषित की वकालत करना चाहे वह सामान्य व्यक्ति हो या भूतपूर्व शासक हो, प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति नही है। यह तो एक उदार सघर्ष है और इसके लिए काफी साहस की आवश्यकता होती है। किसी स्थान पर गाँधीजी ने धनिको को अछूत बताते हुए कहा है कि उनकी वकालत करना तथा समाज मे उनको ठीक स्थान दिलाना कर्त्तव्य है। भीड को खुश करना कोई सरल काम नही है किन्तु अपने धर्म का पालन

प्रतिज्ञा पत्र हैं जिनमे एक दो की नहीं अपितु पचास करोड़ भारतीयों की वाणी प्रतिध्वनित है जिनके भग होने से एक दो की नहीं बल्कि पचास करोड़ भारतीयों की प्रतिष्ठा धूल मे मिलती है।

प्रिवी पर्सो के उ मूलन से न तो समाजवाद आता है और न आय वषम्य मिटता है हाँ, वचन निर्वाह के लिए विश्व प्रसिद्ध भारत के मस्तक पर कलक का अमिट धब्बा अवश्य लगता है। ठीक है कि सविधान मे छोटे मोटे परिवतन सशोधन करने का ससद् को अधिकार है किन्तु क्या पचास करोड जनसख्या वाले विशाल क्षेत्रीय एव विश्व सम्मानित भारत की प्रतिष्ठा को धूल मे मिलाने का भी ससद् को अधिकार है ? यह अधिकार ससद् का नही है, यह तो ससद् म बठे तथाकथित समाजवादियो का अपने मतदाताओं के साथ विश्वासघात है, यह तो मुट्ठी भर लोगो का पचास करोड लोगो की प्रतिष्ठा से खेलना है यह तो महात्मा गाँधी एव सरदार पटेल की आत्माओ को क्लेश पहुँचाना है।

नरेशो के प्रिवी पस ब द करने का कुविचार नतिकता का हनन है भारत की धमप्राणता की हत्या है, देशवासियों क साथ विश्वासघात है।



चक्रवर्ती श्री राजगोपालाचारी

मूख गुड को डली न दे, भेली दे

किये हुए अनुब ध को ईमानदारी के साथ पूरा करना केवल सद्‌नीति ही नहीं है अपितु नतिकता की दृष्टि स भी बहुत जरूरी है और यदि अनुब ध किसी सरकार ने किया हो और वह भी काफी सोच विचार के बाद तब तो उसका पूरा करना और भी जरूरी है। हाँ सरकार भी वह जिसने वाणिज्य एव व्यापार म भाग लेना शुरू कर दिया हो तो उसक लिए अपने अनुब धो को पूरा करना अपनी अ तर्राष्ट्रीय साख को बनाए रखने की दृष्टि से भी अनिवाय है। और यदि उस सरकार का राजकीय चिह्न सत्यमव जयत हो तो उसक लिए तो मन से वचन से कम स सत्य का पालन करना अनिवाय है क्योंकि यह कवल उसकी अपनी प्रतिष्ठा का ही प्रश्न नहीं है अपितु सम्पूण राष्ट्र की प्रतिष्ठा का प्रश्न है प्राण जाहु बरु बचनु न जाई आप्त वाक्य का पालन करने वाले धमप्राण भारत की प्रतिष्ठा का प्रश्न है।

जब पोशिया ने शाइलाक से दयावान् होने के लिए कहा तो उसने पूछा क्या ? मुझे दयावान होना क्या जरूरी है ?' तब हमारे लिए ही अपन वचन

करना और भी कठिन काम है। इसलिए मैं तो यही कहूंगा कि भारत को अपनी अंतराष्ट्रीय ख्याति एवं अपनी साख को ध्यान में रखते हुए अपने वचन का पालन करना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक क्षेत्र में आगे बढ़ने की दृष्टि से यह बहुत ज्यादा जरूरी है। भूतपूर्व शासक एवं उनके वंशज अपने अधिकारों की रक्षा करने में पूरी तरह सक्षम हैं। वाणिज्य एवं राजनीति के क्षेत्रों में जिस योग्यता की अपेक्षा है उसमें वह मौजूद हैं। प्रिवी पर्स बंद कर देने से वे भूखे नहीं मर जाएंगे। जनसाधारण में आज भी उनकी साख है, उनकी प्रतिष्ठा है और इतनी अधिक है जितनी कि सत्तारूढ़ कांग्रेसियों को न कभी मिली है और न कभी मिल सकेगी। प्रिवी पर्स बंद करने की धमकी पराजित कांग्रेसियों की दूषित मनोवृत्ति की परिचायिका है। उनका विचार है कि प्रिवी पर्स बंद कर देने से भूतपूर्व राजा महाराजाओं की लोकप्रियता घट जाएगी किन्तु इनको जिस बात का पता नहीं वह यह है कि इनके इस कदम का प्रभाव उल्टा पड़ेगा और स्वयं इन लोगों की लोकप्रियता कम हो जाएगी।

संविधान में नागरिकों के मूल अधिकारों की धारा श्री कन्हैयालाल माणिक लाला मुंशी ने रखवाई थी। उनका विचार था कि इस प्रकार वह स्वदेश वासियों की सेवा कर रहे थे। यदि ये मूल अधिकार संविधान में न लिखे गए होते तो सर्वोच्च न्यायालय इनकी सब रूपेण रक्षा कर सकता था। किंतु इनका संविधान में लिखा जाना (यद्यपि स्वेच्छा से यह कदम उठाया गया था) आज नागरिकों के लिये एक अभिशाप बन गया है क्योंकि संसद् इनमें तरह-तरह के परिवर्तन करना अपना अधिकार समझती है और इस तथा कथित अधिकार का दुरुपयोग करती रहती है। संविधान में नागरिकों के मूल अधिकारों की धारा रखवाते समय श्री मुंशी ने इस बात की कल्पना भी नहीं की थी। वास्तव में यह सब कुछ उनकी इच्छा के विरुद्ध एवं प्रतिकूल है। इसी प्रकार जब भूतपूर्व शासकों से सरदार वल्लभ भाई पटेल ने अनुबंध किया था और उनको रियासतों के बदले में प्रिवीपर्स एवं कुछ विशेषाधिकार देने का वचन दिया था, तो उनकी इच्छा अपने वचन या अनुबंध को भंग होते देखने की नहीं थी। इसलिए उन्होंने इस बात को भी संविधान में सम्मिलित कर दिया था जिसमें संशोधन करने के बहाने आज कांग्रेसी अपनी ईर्ष्या एवं दुर्बुद्धि को साकार कर रहे हैं। यदि यह अनुबंध संविधान में सम्मिलित न किया जाकर पृथक से संधि पत्र या अनुबंध पत्र के रूप में होता तो आज सर्वोच्च न्यायालय भूतपूर्व शासकों की ओर रहता है और उनके

अधिकारो की रक्षा करता। यद्यपि सरदार पटेल का दृष्टिकोण इस अनुबन्ध को दुगनी सुरक्षा प्रदान करने का था और इसलिए उन्होने उसे सविधान में शामिल किया था, किन्तु वर्तमान कांग्रेसी स्वार्थान्ध एव ईर्ष्यान्ध होने के कारण उस अनुबन्ध की पावनता को भग करने पर तुले हुए है।



श्री एम० आर० पई
मत्री प्रबन्ध उद्यम मच

प्रिवीपर्सो और शाही विशेषाधिकारो को अन्त मे समाप्त कर देने के प्रस्ताव ने काफी गर्मी पैदा कर दी है।

शाही विशेषाधिकारो को खत्म करना कठिन है। राजे-महाराजे उनका उपयोग सरकार के साथ एक पवित्र समझौते के परिणामस्वरूप करते है। इसके विपरीत ऐसे अनेक राजनीतिज्ञ है जो इस प्रकार के विशेषाधिकारो अथवा सुविधाओ का उपभोग बिना किसी आधार के किये जाते है।

उदाहरण के तौर पर जिस मत्री-महोदय ने दस लक्ष्यीय कार्यक्रम को अपनाने के लिए जोरदार दलीले दी थी यदि उन्होने उनकी बजाय यह प्रस्तावित किया होता कि मत्रियो, ससद्-सदस्यो और विधान सभा के सदस्यों के विशेषाधिकारो और सुविधाओ को रद्द कर दिया जाए तो जनता उनकी आभारी होती और लोगो को उनकी दलीले पसन्द आती। एक केन्द्रीय मन्त्री को केवल 2250 रुपये माहवार मिलते है लेकिन उन्हे लगभग 4,000 रुपये के मूल्य की मुफ्त बिजली पानी की विशेष सुविधाएँ मिलती हैं। इसका मतलब यह हुआ कि उनका कर-दायित्व और वार्षिकी-जमा मे रकम भरने की मात्रा मे कमी होना। वास्तव मे उचित बात तो यह होती कि मत्रियो को 80,00 से 10000 रुपये माहवार तक का वेतन दिया जाए लेकिन कोई चीज मुफ्त नही। आमदनी पर उनको अपने कर देने चाहिएं और सामान्य नागरिको की तरह उनको भी प्रत्येक वस्तु के लिए बाजार की कीमतें चुकानी चाहिए।

ससद् और विधान सभा के सदस्यो को भी अनेक प्रकार की विशेष सुविधाएं और विशेषाधिकार प्राप्त है जिन्हे तत्काल खत्म कर देना चाहिए। उदाहरण के तौर पर एक संसद्-सदस्य केवल एक बार हाजिरी-रजिस्टर मे दस्तखत कर 31 रुपये प्रतिदिन की दर से 15 दिन की रकम वसूल कर सकता है, भले ही वह 14 दिन ससद् मे मौजूद न रहें।

को न्यायालय मे प्रस्तुत किया गया यो न्यायाधीश महोदय ने उसके दण्ड की घोषणा के पहले उसकी भर्त्सना करते हुए कहा . 'जो तुम पर विश्वास करता है, उसे छलते हुए तुम्हे शर्म नही आती ।' अपराधी ने उत्तर दिया : 'न्यायाधीश महोदय ! यदि मैं विश्वास करने वाले को न छलूँ, तो मेरी छली मे और कौन आएगा ?'

नरेशो ने सरदार वल्लभभाई पटेल पर विश्वास किया और अपनी रियासते उनके हवाले कर दी । सरदार पटेल ने अपने अन्तिम क्षण तक उस विश्वास की रक्षा की । कुछ लोगो ने उन पर जोर दिया कि वह नरेशो के साथ विश्वासघात कर दे और उनको दिया वचन पूरा न करे किन्तु सरदार पटेल ने उनको डाँट कर चुप करा दिया । सरदार पटेल तो इन असत्यमार्गियो के बहकाने मे नही आए किन्तु उत्तराधिकारी आज इस बहकावे मे आ गए है । उनका विचार है कि अब कोई उनके सिर पर तो बचा नही, इसलिये वह अपनी मनमानी करने के लिये स्वतन्त्र है और ससद् की आड में अपने पर विश्वास करने वालो के साथ ठगी कर सकते है । शायद उन्होने इस ओर ध्यान नही दिया कि उनके इस दुष्कर्म को विश्व के अन्य देश तो देखेंगे और उनका क्या विचार है कि इस दुर्घटना के बाद से भारत के वचनो पर एक क्षण के लिए भी विश्वास करेंगे । क्या यह दण्ड कम है कि अन्य देश भारत की किसी बात पर विश्वास करने के लिए तैयार न हो ! विश्व मे भारतवर्ष की साख मिट जाना उसके लिए बहुत बड़ा दण्ड है ।

० ० ०

यदि भारत सरकार नरेशो के साथ किये गये समझौतो के फलस्वरूप उनको मिलने वाले प्रिवीपर्सों एव विशेषाधिकारो को सविधान मे सशोधन करके समाप्त कर देती है तो उसके इस कदम से श्री जवाहरलाल नेहरू, श्री वल्लभभाई पटेल का और मेरा अपमान होता है दूसरे शब्दो मे, हम तीनो के नाम पर कलक लगता है ।

यदि एक देश की सरकार कुछ पैसे बचाने के लिये अपनी ससद् मे दो तिहाई बहुमत से अपने सविधान मे संशोधन करने से नही हिचकिचाती, तो आप तनिक कल्पना कीजिये कि फिर कौन व्यक्ति या देश उस सरकार का, उस ससद् का या देश का विश्वास करने को तैयार होगा ! और यह राशि भी कोई दान-स्वरूप दी जाने वाली राशि नही अपितु वह पवित्र राशि है जो

भी था कि शासन के शेष क्षेत्र में वे अपने राज्यतंत्र का पूर्ण उपभोग करते रहेंगे। लार्ड माउंट बैटन ने अपने वक्तव्य में, जिसका कि यहाँ संदर्भ दिया जा चुका है स्पष्ट किया कि यह समपर्ण रियासतों पर किसी प्रकार का आर्थिक भार नहीं डालेगा और उनके आंतरिक राज्यतंत्र या प्रभुसत्ता पर अतिक्रमण करने का कोई इरादा नहीं है और उन्हें संघीय संविधान मानने को भी बाध्य नहीं किया जायगा।

शक्ति का कोई लाभ नहीं

इस प्रकार (स्मरण पत्र के अनुसार) नरेशों पर अपनी रियासतों को भारतीय संघ में मिलाने के लिए कोई दबाव नहीं था। यह रियासत मंत्रालय ने समझ लिया था कि उस स्थिति में किसी शक्ति का प्रयोग करने के परिणाम गम्भीर होते। नरेशों ने यदि स्वयं को एकीकरण से अलग रखा होता तो वे काफी संख्या में राजकीय कर्मचारी बनाये रखते और अपनी रियासत के राजस्व का बिना किसी रोक टोक के उपभोग करते जैसा कि वे बराबर करते रहे थे।

इसलिए कम से कम जो रियासत मंत्रालय नरेशों को दे सकता था, वह समुचित क्षेत्र में नरेशों के समाज को मान्यता और स्पष्ट रूप से सीमित राज्य कर्मचारी और उचित आधार पर कुछ विशेष व्यक्तिगत विशेषाधिकार चूँकि नरेशों ने अपने समस्त शासनाधिकारों को त्याग कर व अपनी रियासतों के विलीनीकरण को स्वीकार करके अपने कर्तव्य को पूरा कर दिया है इसलिए इन समझौतों के अंतर्गत दिए गये प्रिवीपर्स एवं विशेषाधिकारों के आश्वासनों को पूरा करने की गारंटी देना भारत सरकार का कर्तव्य है। संविलयन समझौतों के अनुसार प्रिवीपर्स सब प्रकार के आय करों से मुक्त थे चूँकि नरेश अपने क्षेत्रों में सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न थे इसी लिए उन्हें समस्त आयकरों से मुक्त रखा गया।

अक्तूबर 1949 में सरदार पटेल ने संविधान सभा में रियासत मंत्रालय की स्थिति को स्पष्ट करते हुए स्मरण पत्र में लिखी बातों की पुष्टि की—प्रिवीपर्स का समझौता नरेशों द्वारा किये जाने वाले व्यय को, जो कि वे पहले करते रहे हैं घटाकर कम से कम एक चौथाई कर देगा। किन्तु आर्थिक और राजनैतिक बन्धन से अधिक उन्होंने समझौते के राजनैतिक और नैतिक स्तर पर ही अधिक बल दिया मानव स्मृति क्षीण है।

अक्टूबर 1949 मे शायद हम इस समस्या की उस भयंकरता एव गम्भीरता को भूल गए हैं जो अगस्त 1947 मे हमारे सामने थी।'

सार्वभौम सत्ता की समाप्ति पर हमे अपनी स्वाधीनता प्राप्ति के समय अग्रेजो के साथ हुए समझौते के भाग को भी स्वीकार करना ही था। इसलिये प्रवीपर्स समझौते तो शासकों को उनके सत्ता त्याग एव अपनी रियासतो को विलय कराने की क्षत-पूर्ति के रुप मे हैं। सरदार पटेल ने कहा :

"इस पर हमे कुर्तक करने की विल्कुल आवश्यकता नही है—मैंने जान बूझ कर थोडे मूल्य का प्रयोग किया है जो कि हमने उस रक्तहीन क्रान्ति के लिए चुकाया है जिसने लाखो लोगों के भाग्य को प्रभावित किया है ?"

उन्होंने सविधान सभा को वतलाया कि रियासत मत्रालय द्वारा प्रस्तावित सशोधनो का, मैसूर, सौराष्ट्र, ट्रावन्कोर और कोचीन सघ की विधान वनाने वाली सभाओ ने परीक्षण कर लिया है। इन सभाओं दारा प्रस्तावित कुछ रुपान्तरो को इन सशोधनो मे सम्मिलित कर लिया गया है, कुछ को इन विधान सभाओ के प्रतिनिधियो से तर्क करके समाप्त कर दिया गया है। दूसरी रियासतो और रियासतो के सघो के प्रतिनिधियो द्वारा लोगो की इच्छाओ और विधि को उसी तरह स्वीकार करना सम्भव नही था।

शेष रियासतो मे उचित रुप से वनी हुई व्यवस्थापक सभाये नही थी, और न उनमे, भारतीय सविधान मे अतिम रुप से विलय होने से पूर्व, व्यवस्थापक सभाओ का वनाया जाना ही सम्भव था।' इसलिये इन रियासतो मे वहाँ के शासक, राज प्रमुख की अनुमति लेकर सविधान लागू करने के अतिरिक्त और कोई चारा ही नही था।

सविधान सभा के अतिम अधिवेशन मे, सविधान ग्रहण करने से पहले 26 नवम्बर 1949 को सरदार पटेल ने रियासतो की ओर से घोपणा की :—

"सम्मानीय सदस्यो को याद होगा, 12 अक्तूबर को मैंने अपने वक्तव्य मे नये सविधान के अन्तर्गत रियासत मत्रालय की स्थिति को इस सदन के सामने पूर्ण रुप से स्पष्ट किया था। रियासतो के द्वारा सविधान की स्वीकृति की विधि पर जो हमने विचार किया है वह मै सम्मानित सदस्यो को वतला दूँ। मैं सदन को यह सूचित करते हुए प्रसन्न हूँ, कि

य समस्त 9 रियासतें जो सविधान की पहली सूची के विभाग म विनिष्ट रूप स दी गई हैं उ होने हैदराबाद रियासत क सहित उस सविधान को जिस कि हम ग्रहण करने जा रहे हैं उसी तरह स्वीकार करने क लिय हस्ताक्षर कर दिये है जसा कि मैंने अपने वक्तव्य म 12 अक्तूबर को बतलाया था।"

पटेल की अतुष्टि

रियासत मत्रालय के सचिव श्री वी० पी० मनन और सविधान सभा के मुख्य प्रारूप लखक (चीफ ड्राफ्टस मन) श्री एस० एन० मुकर्जी क बीच सित बर 1949म लगातार हुए पत्र व्यवहार से यह स्पष्ट है—कि सविधान सभा के अतिम अधिवेशन के बाद हो सविधान का रियासत सम्बन्धी व राजा को दिये गये अतिम रूप म सरदार पूरी तरह सतुष्ट नहीं थे। श्री मुकर्जी ने अपने उत्तर म धारा 363 के सम्ब ध म रियासत मत्रालय को कुछ उल्टा समय का निर्देश दिया मत्रालय ने कुछ सशोधनो का प्रस्ताव किया है जिन का मुख्य आकृति यह थी (1) प्रिवीपर्स की धन राशि को चुकाने की सव धानिक गारटी और उनकी आयकरो से मुक्ति। (2) सविलयन याजना के अन्तगत प्रसविदाओ और समझौतो को कोई धारा न्यायालय के अधिकार क्षत्र म न रहे किन्तु इसके साथ ही ऐसी प्रसविदाओ और समझौतो के लिये भारत सरकार द्वारा दिये गये वचनो को सवधानिक मा यता दी जाय।

श्री मुकर्जी ने कहा,

जहा तक (1) का सम्ब ध है धारा 291 के अ तगत इसको विधान स्पष्ट बनाया गया है और असदिग्ध रूप से प्रिवीपर्स की धन राशि को भारत सरकार की समन्वित निधि पर केवल अधिकार ही नहीं है बल्कि इस राशि का भुगत न भी इसी निधि से किया जायगा। इसी धारा म आगे यह भी दिया गया है कि वह धन राशि सभी प्रकार के आयकरो स मुक्त रहगी। धारा 363 किसी तरह भी धारा 291 म दी गई गारटियो और सवधानिक वचनो को समाप्त नहीं कर सकती। धारा 362 और 363 ऊपर दिय गय अनुच्छद (2) के भाग की धारा को पूरा करती हैं। पहली नरेशो क अधिकारो व विशेषाधिकारो इत्यादि की स्पष्ट सवधानिक मान्यता प्रदान करता है और दूसरा समझौता औरप्रस विदाओ इत्यादि की धाराओ को न्यायालयो के अधिकार क्षत्र से बाहर

रखती है । निसदेह धारा 363 अधिकार के विपय मे उठे किसी विवाद या किसी उत्तरदायित्व या वचन या सविधान की किमी सधि, समझौतो प्रसविदाओं इत्यादि से सम्बन्धित उठे विवादो को न्यायालय के अधिकार क्षेत्र पर प्रतिवन्ध लगाती है, किन्तु धारा के प्रारम्भिक भाग मे जो कुछ दिया गया है उसके लिये यह स्पष्ट रुप से एक आवश्यक उप सिद्धात है ।

न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र से बाहर

प्रिवीपर्सों के सम्बन्ध मे न्यायालयो के अधिकार क्षेत्र पर प्रतिबन्ध लगाने के तर्क का पक्ष श्री मैनन को दिलाया गया था जो कि रियासत मन्त्रालय द्वारा इन शब्दो मे बताया गया था, "यदि इन समझौतो को न्यायालय मे ले जाने की छूट दे दी गई तो यह नित्य ही दुखी होने का कारण बन जायगा।"

एक अन्तिम प्रकरण मे श्री मुकर्जी ने कहा :—

"प्रारूप लेखन समिति (ड्राफ्टिंग कमेटी) को अब सविधान के विधानो से कोई सम्बन्ध नही रह गया है । सविधान के किसी विधान के सम्बन्ध मे सदेह का सही विश्लेपण अब अधिकार पूर्वक केवल सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ही निश्चित किया जा सकता है । हम यह नही समझते कि किसी का भी सविधान के किसी विशेप विधान के सम्बन्ध मे उसके सही अर्थ का अनुमान लगाने या क्षेत्र के विपय मे दुखी होना उचित है । डाक्टर अम्बेडकर की राय मे साधारणत सविधान की किसी धारा में सशोधन करने का प्रस्ताव तब तक नही करना चाहिए जब तक कि न्यायालय मे उचित रूप मे इस पर विवाद न हो चुके और सर्वोच्च न्यायालय को इसका विश्लेपण करने का सुअवसर न प्राप्त हो जाये।"

यह बताना लाभदायक होगा कि सन 1937 मे उसके दो वर्प बाद तक वामपक्षीकाँग्रेसी नेताओ ने नरेशो के राज्यतत्र के विपय में अपने असयमी निर्देशो से नरेशो को मुस्लिम-लीग की गोद मे जाने को विवश कर दिया था । किन्तु कम से कम यह कहा जा सकता है कि काँग्रेस उस समय रियासतो में कुछ सुधारो और जन प्रतिनिधियो की माँग कर रही थी किन्तु उसमें उनके (रियासतो) सघ मे सम्मिलित होने की शर्त भी उस माँग के साथ थी । प्रजातत्र के मोर्चे को सुदृढ बनाने के लिए यह एक उचित और सराहनीय माँग थी ।

इस बच बा० सरदार पटेल ने नरेशो की इच्छा और राय से एक रक्तहीन क्रान्ति" लाने के बदले मे 'थोडा सा मूल्य' देकर कही उससे महान उद्देश्य को प्राप्त कर लिया। समझौतो के मुख्य सिद्धान्तो पर आधारित जिस परित्याग का नरेशो से प्रस्ताव किया गया था उसके लिए केवल सरदार पटल ही नही पूर्ण सविधान सभा एक पक्ष के रूप म थी उसके नियमित कार्यक्रम के अनुसार जो नरेशो के विरुद्ध 30 वर्ष पहले बनाया गया था, पुन मोल भाव करने का कोई कारण नही है।

●

श्री मुरारजी आर देसाई

उपप्रधान मत्री माननीय श्री मुरार जी आर० देसाई ने पटेल स्मारक व्याख्यान माला के अ तगत 18 दिसम्बर सन् 1963 मे ही प्रिवीपर्सों एव विशेषाधिकारो के विरोधियो को मुह तोड उत्तर दते हुए शताब्दियो से प्रती क्षित भारतीय एकता का अपन शब्दो म कितना सजीव चित्रण किया है (यह व्याख्यान आकाश वाणी नई दिल्ली से प्रसारित भी किया गया था।)

"किन्तु अगल दिसम्बर म क्या हुआ जबकि उन्होने उडीसा और छत्तीस गढ की छोटी रियासतो को मिला कर एक कर दिया तो हम स्तब्ध रह गए। इसमे सदेह नही कि स्वत त्रता प्राप्ति से हुए परिवतनो स प्रभावित होकर इन रियासतो की स्थिति हमार प्रश्न म हो गई थी और आशाये व लालसाय पूर्व कालीन ब्रिटिश भारत व देशी रियासतो की सीमाय पार कर गई थी। इन रियासतो के शासको ने जिन्हे ब्रिटिश सत्ता के भीतर काफी अधिकार प्राप्त थे, उस परिवतन के प्रभाव को अनुभव करना आरम्भ कर दिया था। किन्तु उनमे स यह अनुमान किसी को नही था कि 56000 वग मील म फला 70 लाख जन सख्या वाली और 2 करोड के राजस्व वाली उडीसा और छत्तीस गढ की 39 रियासतें दो दिन क भीतर ही उडीसा और मध्य प्रात क आमन क्षत्र म विलय हो जाएगी। इस उपलब्धि क उपरान्त पहली बार सरदार पटल ने अपनी रियासत विषयक नीति की झलक दी। 16 दिसम्बर 1947 को दिल्ली लौटने पर उन्होने कहा यह बात हर किसी को स्पष्ट हो गई होगी कि कोई भी वास्तविक अथवा लोकतान्त्रिक सस्था तभी कुशलता पूर्वक अपना काय कर सकती है जबकि उस इकाई का जिसमे वह समाविष्ट

है, अस्तित्व समयक रूप से स्वायत्तता सम्पन्न हो। यदि कोई रियासत चाहे अपने छोटे आकार के कारण, चाहे अपनी पृथक स्थिति के कारण चाहे अपन पडौसी स्वायत्त क्षेत्र से विभिन्न सम्बन्ध होने के कारण चाहे अपेक्षित साधनो के अभाव मे अपनी आर्थिक क्षमताओ का पूर्ण उपयोग न कर पाने के कारण चाहे अपने निवासियो के पिछडेपन के कारण और चाहे स्व-प्रशासन के उत्तरदायित्तो को निभाने की अपनी असमर्थता के कारण, वर्तमान शासन व्यवस्था को अपनाने मे समर्थ नही हो पाती है तो उसका लोकतन्त्रीकरण और सविलयन करना अनिवार्य हो जाता है।"

एकीकरण का आरम्भ बडे अच्छे ढग से हो चुका था और शताब्दियो से चली आने वाली दो ऐतिहासिक असगतताओ को देश के पिछडे से पिछडे भागो से हटा दिया गया था। इन क्षेत्रो मे उत्पन्न की गई चिनगारी शीघ्र ही लपट का रूप ले गई। एकीकरण की ज्योति (मशाल) जो सरदार लेकर चले थे उसने अपना मार्ग शीघ्र ही दक्षिण की रियासतो, कोल्हापुर, गुजरात, पजाब की व देश की अन्य छोटी-छोटी रियासतो मे पा लिया, किन्तु उस सम्बन्ध मे सरदार को सबसे बडी सफलता मिली काठियावाड मे, जिसके विलय का उन्होने गाँधी जी को वचन दिया था और जिसे गाँधी जी को अपने जीवन काल मे ही पूर्ण होते देखने का सौभाग्य प्राप्त हो गया था। 449 इकाइयो वाली 220 रियासतो ने बहुत से छितरे हुए द्वीपो और राज्यो ने काठियावाड के मानचित्र को 860 भागो मे विभक्त कर रखा था। सरदार इस कार्य की सिद्धि के लिये उत्सुक थे, किन्तु कुछ दुर्भाग्यपूर्ण मतभेदो के कारण सरदार ने सरकार से त्यागपत्र देने का निश्चय कर लिया था, इसलिए उन्होने बम्बई और अहमदाबाद जाने का निश्चय किया जिससे कि वह काय क्षेत्र के समीप रह सके, और उन्होने श्री० वी० पी० मैनन और उनके साथी अफसरो को राजाओ से बातचीत करने के लिये काठियावाड भेजा। जनवरी 194८ मे अहमदाबाद मे श्री वी० पी० मैनन ने, काठियावाड को एक सयुक्त रियासत बनाने के लिये राजाओ की सम्मति की, सूचना उन्हे दी। मैने सरदार के चेहरे पर कीर्ति और उनकी अपनी जन्म भूमि पर कार्य सिद्धि का ज्ञान देखा।

छोटी रियासतो का वास्तविक रूप से एकीकरण पूर्ण हो जाने के बाद सरदार ने अपना ध्यान कुछ कमी वेशी के साथ, काठियावाड क नमूने पर, बडी रियासतो की समस्या की ओर लगाया। मार्च 1948 मे 'कौरेनरी

थ्रोम्बोसिस' (अंग में रुधिर जम जाना) के आक्रमण के कारण, उनकी दुर्भाग्यपूर्ण बीमारी से प्रगति किसी सीमा तक रुक गई। बावजूद इसके, बीमार दशा में भी उनके नेतृत्व में या बाद में देहरादून में धीरे धीरे स्वस्थ्य होने पर हिमाचल प्रदेश, विन्ध्य प्रदेश पेप्सू मध्यभारत और राजस्थान की रियासतों तक, जयपुर, जोधपुर और बीकानेर की रियासतों के अतिरिक्त राजाओं से बड़ी चतुराई के साथ बातचीत होने पर प्रगति फल चुकी थी। एकीकरण का यह तरीका छत्तीसगढ़ और पूर्वी रियासतों के अनुरूप ही था। छोटी रियासतों का एक संघ बना कर पड़ोस की बड़ी रियासत के साथ मिला दिया गया था। इस प्रकार विन्ध्य प्रदेश का केन्द्र रीवां था, पेप्सू का केन्द्र पटियाला था मध्य भारत की रियासतों के संघ में ग्वालियर व इन्दौर बड़ी रियासतें थी, और राजस्थान की संयुक्त रियासतों का केन्द्र उदयपुर था। एकीकरण का केन्द्र बड़ी रियासतों के बीच में बनाना एक चतुराई का काम था क्योंकि इसने भारतीय रियासतों और प्रान्तों के बीच में एक रूपता के प्रबन्ध को दृढ़ कर दिया और उसी समय शीघ्रता से उसी तरह की उपमा अन्य छोटी रियासतों की पूर्व स्थितियों में कमी कर दी। इन संघों के नेता शासकों को बना कर, सरदार ने अपने 16 दिसम्बर 1947 के वक्तव्य का रचनात्मक प्रमाण दिया जिसमें उन्होंने अपने इस विश्वास को स्पष्ट किया था कि नरेशों का भविष्य उनकी अपनी जनता और देश की सेवा में निहित है न कि उनके राजतन्त्र को दृढ़ता पूर्वक जारी रखने में।"

एकीकरण के तरीके ने रियासतों में उत्तरदायी सरकारों की सीमायें भी बता दी। उसमें राजनैतिक दलों की क्रमिक उन्नति और बड़ी रियासतों में उत्तरदायी सरकार बनने में प्रगति हुई और जिसका उपयोग छोटी रियासतों में लोकतन्त्र की उन्नति करने में किया गया। सरदार के प्रयास केवल एकीकरण तक ही सीमित नहीं थे। वह अन्तवर्ती स्तर से संविधान से यह उत्तरदायी सरकार की ओर शीघ्रता से बढ़े और उन्होंने रक्षा की शासन पद्धति स्थापित की जिसमें कि अधिक परिपक्व और उन्नतिशील प्रजातन्त्र भारतीय प्रान्तों में विकसित हुआ और केन्द्र का इन नई इकाइयों में प्रजातन्त्र को पनपाने का सहारा मिला। इन इकाइयों और पुराने प्रान्तों के बीच में एक समानता शासन पद्धति शीघ्रता से आरम्भ की गई।

यह एक आश्चर्य की बात है कि सरदार का मस्तिष्क कितनी तेजी से एकीकरण के अंतिम चिन्ह की ओर पहुंच रहा था। यद्यपि वे धीरे धीरे

प्रगति का प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु चल तेजी से चल रहे थे। छोटी रियासतों के प्रान्तो मे विलयन के साथ ही छोटी रियासतो का विलयन बड़ी रियासतो मे कराने की ओर उन्होने एक वर्ष से कम समय मे ही प्रगति कर ली थी। उन्होने तेजी से एक रूपता, एकता और प्रजातन्त्रीय मार्ग पर चलना आरम्भ कर दिया था। जबकि यह पद्धति जारी थी तब भी उन्होने इन छोटी इकाइयो को बडी इकाइयो मे, भारतीय सघ मे लगभग प्रांतो की पद्धति पर, बढ़ाने. के लिये सोचना आरम्भ कर दिया था।

तो भी भारतीय एकता के लिये, कश्मीर और हैदराबाद, दो रुकावटे अब भी थी। अक्तूबर 1947 मे पाकिस्तान अपने नए रूप मे, पूरी शक्ति के साथ कश्मीर पर आक्रमण की पहल कर चुका था। तब रियासत भारत मे मिल गई और हम उसकी रक्षा के लिये दौडे। इस प्रकार दृढता से चुनौती का सामना करना पडा किन्तु रियासत का एक बडा भाग पाकिस्तान के हाथो मे पड गया और सयुक्त राष्ट्र सघ ने झगडे को रोक दिया। तब भी इसके भारत मे मिल जाने के बाद रियासत ने सवैधानिक, प्रशासनिक एव आर्थिक रूप से उत्तम प्रगति की है। आज इसने भारतीय सघ के स्वाभाविक तत्वो के बीच मे अपना उचित और सम्मानीय स्थान प्राप्त कर लिया है।-

हैदराबाद की रियासत तब भी एक विशेष श्रेणी की थी। यद्यपि यह विधिवत् पाकिस्तान मे नही मिल पाई थी, इसमे कोई सदेह नही कि रियासत के कुछ विशेष तत्वो और पाकिस्तान के बीच मे, यहाँ तक कि प्रशासन के अधिकारियो तक मे, कुछ भावनात्मक एव धार्मिक कडी थी। वास्तव मे, इसमे सदेह भी नही किया जा सकता कि पाकिस्तान भारत के विपक्ष मे अपनी स्थिति के लिये षडयंत्र रच रहा था। एक युद्ध प्रिय साम्प्रदायिक सस्था, निश्चल शान्ति की हँसी केवल रियासत मे ही नही बल्कि इसकी सीमाओ पर भी उडा रही थी। सुविधाये, प्रोत्साहन, एव शान्ति-प्रस्ताव रखने पर भी हम किसी प्रकार का उत्तर प्राप्त करने मे असफल हो चुके थे। उसी समय भारत की एकता एव सुरक्षा को, भारत के पेट के इस नासूर द्वारा दी गई धमकी, जैसा कि सरदार पटेल उसे कहा करते थे, पहुंची जा रही थी। अन्त मे, इसको शल्य क्रिया द्वारा ठीक करने के अतिरिक्त कोई उपाय नही रहा, उस समय की घटनाओ से भली भांति परिचित होने के कारण मैं कह सकता हूँ कि उनकी अद्वितीय शल्य क्रिया की चतुराई उनका

दृढ विचार एव भारतीय एकता के लिये उनकी एकाग्र लगन एव निष्ठा के बिना यह चीर फाड सफल नही हो पाती और हैदराबाद को रियासत हमारे राजनतिक शरीर मे बराबर पीडा देन वाली बना रहती । तब भी वह विजय प्राप्त करने पर उदार थे, इसको सबसे पहले निजाम ने स्वीकार किया होगा कि उनके (निजाम के) साथ केवल उदारता का व्यवहार ही नही किया बल्कि सावधानी का व्यवहार भी उस व्यक्ति (सरदार पटेल) के द्वारा हुआ जो कठोरता और शक्ति के लिये प्रसिद्ध था । मेरे विचार से हैदराबाद की समस्या का जो कि खतरे की दी गई धमकी के कारण खडी हो गई थी 'पुलिस कारवाही' द्वारा समाधान करना भारतीय एकता का एकीकरण करने के लिये बडी देन थी कम से कम इसे दूसरी रियासतो के मिलाये जाने के बराबर का दर्जा तो दिया ही जाना चाहिये ।

एक बार म ही हैदराबाद का प्रश्न इस ढग से तय किया गया जिसने भारतीय एकता और सुरक्षा को सुरक्षित किया । सरदार पटेल अब अन्य प्रश्नो का हल करन क लिय स्वतत्र थ, जिसको कि उन्होने नय सघो और अकेली बडी रियासतो का भारत की सवधानिक पद्धति म मिलाने की बहुत पहले ही विशिष्ट आकृति बना ली थी । उसक अनुसार रियासतो क सघो को, सविधान के अनुसार उन समस्त विषयो को लेकर, जिनक लिय सघ क अधिकार भारतीय प्रा तो तक बढा दिये गय थ भारतीय सघ म पूर्णत मिलाने के लिये बातचीत आरम्भ की गई । नये सघों म प्रजातत्रीय पद्धति क साथ प्रशासनिक समस्याओ व सवधानिक एकीकरण के बीच वाले समय क बचाव क लिय, सरदार ने जिस ढग से राज प्रमुखो और रियासतो क जन प्रिय नेताओ को अपने अनुकूल बनाया वह कठिन सिद्ध नही हुआ । किन्तु आर्थिक समस्याओं ने बहुत सी कठिनाइयाँ बढा दीं इसके लिए विस्तार पूर्वक ध्यान देने और देख रेख करने की आवश्यकता हुई । इसक लिय एक 'फाइनेन्शियल ऐडवाइजरी कमेटी' (आर्थिक अन्वेषण कमेटी) नियुक्त की गई जिसके चेयरमन श्री० वी० टी० कृष्णमाचारी थे जिसकी रिपोर्ट मुझे याद है यह नई सधि और रियासतो की आर्थिक समस्याओ पर एक विशद लक्ष्य प्रमाण (दस्तावेज) है । कमेटी ने निम्न विस्तृत सिद्धान्त आर्थिक एकता क लिये प्रस्तुत किये और अधिकतर इन सिद्धान्तो क अनुसार अलग अलग रियासतो म सम्बन्धित प्रस्तावो को कार्यान्वित किया गया है —

सघ का आर्थिक एकीकरण प्रान्तो और रियासतों के बीच म निम्न विषयों म पूर्ण समानता पर आधारित होना चाहिये —

(1) केन्द्रीय सरकार को रियासतो मे वही कार्य और अधिकारो का प्रयोग करना चाहिये जो वह प्रान्तो मे करती है।

(2) केन्द्रीय सरकार को प्रान्तो की भांति ही अपने प्रशासनिक सगठनो के द्वारा ही रियासतो मे भी कार्य करना चाहिये।

(3) केन्द्रीय आय व अन्य साधनो का भाग दान प्रान्तो व रियासतो से एक रूपता व समानता पर आधारित होना चाहिये।

(4) केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रतिपादित की जाने वाली सार्वजनिक सेवाओ के विषय मे, और बटने वाले सयुक्त राज्य शुल्क का भाग देने के सम्बन्ध मे, आर्थिक सहायता के लिये दान, "आर्थिक सहायताओ" और दूसरे प्रकार की समस्त आर्थिक एव तकनीकी सहायताओ के लिये प्रान्तो और सरकारो के साथ व्यवहार मे समानता होनी चाहिये।

मैं रियासतो के एकीकरण को प्राप्त करने के एक दूसरे आर्थिक परिणाम, शासको के प्रिवीपर्सो की स्वीकृति को भी बतलाना चाहता हूँ। इन भुगतानो की कुल धन राशि, जो मूल्य देश ने नरेशो द्वारा अपने प्रभुत्व और राज्याधिकारो को समर्पण करने का चुकाया, अब भारतीय सघ को लगभग 4 करोड़ रुपया देना होता है। जब हम लाभो पर ध्यान देते है जो कि देश को इन एकीकरणो के द्वारा प्राप्त हुये है और वे परिस्थितियाँ जो सन् 1947 मे मौजूद थी, मैं साहस पूर्वक यह कहता हूँ कि इन समझौतो के विषय मे कोई शका उठाना भी केवल अनुउदारता और सकुचित विचार ही नही बल्कि उन्हे अस्वीकार करना अनैतिक भी होगा। विशेष रूप से जब हम यह मानते है कि जिस समय ये समझौते हुये थे, उस समय दूसरा पक्ष, वर्तमान स्थिति के विरुद्ध मोल भाव करने की स्थिति मे था, जब वही पक्ष वर्तमान सरकार और ससद की दया पर है। उस भाव से और उससे अधिक विकसित एकीकरण के भाव से भी, मैं सरदार पटेल के उन शब्दो मे बतलाता हूँ जो कि उन्होने नरेशो के साथ हुए समझौतो और रियासतो के एकीकरण से सम्बन्धित सविधान सभा की धारा पर बोलते हुए कहे थे। उन्होने समझौतो को निम्न शब्दो मे न्याय सगत बतलाया था :—

(इससे आगे माननीय मुरारजी देसाई ने सरदार पटेल द्वारा अक्तूबर 1949 को सविधान सभा मे दिये गये व्याख्यान—"मानव स्मृति से ····· लेकर ·· ··काफी आघात पहुँचायेगा ·· ··तक को उद्धृत करके आगे कहा ." (सरदार पटेल का व्याख्यान इसी पुस्तक मे पृष्ट 57 से पृष्ठ 59 तक,

द्वारा अर्जुन को दिए गए कर्म योग का तत्व, इन अमर पंक्तियों में बद्ध कर दिया है।

हमारी संस्कृति एवं दर्शन के अनुसार अन्याय करना तो पाप है ही, अन्याय का सहन करना भी महापाप है। इसी बात को वर्तमान राष्ट्र कवि श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' ने अपने काव्य कुरु क्षेत्र में भीष्म पितामह के मुख से कहलवाया है

छीनता हो स्वत्व कोई, और तू,
त्याग तप से काम ले, यह पाप है।
पुण्य है, विच्छिन्न कर देना उसे,
बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ हो।।

केवल इतना ही नहीं भारतीय दर्शन के अनुसार तो किसी दूसरे के प्रति अन्याय होता देखकर चुप रहने वाला भी पाप का भागी होता है। परम पूज्य राष्ट्र पिता महात्मा गाँधी ने भी कहा है—'सच्चा अहिंसक सामाजिक अन्याय का विरोध किए बिना नहीं रह सकता।

इस अन्याय पूर्ण प्रस्ताव का विरोध करने के लिए नरेशों ने जो शान्ति पूर्ण एवं विधिमय मार्ग ग्रहण किया है वह उनके पद व प्रतिष्ठा के अनुकूल है और वास्तव में प्रशंसनीय भी है—

12 एवं 13 अगस्त 1967 को भारतीय नरेशों एवं उनके प्रतिनिधियों का नयी दिल्ली में एक सम्मेलन हुआ जिसमें उन्होंने इस (अराष्ट्रीय) प्रस्ताव का एक स्वर से खण्डन किया तथा इसका सक्रिय विरोध करने के लिए स्वयं को कंसल्टेशन आफ रूलर्स फार इण्डिया' (भारतीय नरेश विचार विमर्श समिति) नाम से संस्थाबद्ध किया। 15 अगस्त को नरेशों ने कंसल्टेशन आफ रूलर्स आफ इण्डियन स्टेटस इन कन्कोर्ड फार इण्डिया संस्था का गठन किया, जिसे संक्षेप में कन्कोर्ड फार इण्डिया या कन्कोर्ड' कहते हैं।

अन्त में समिति के समस्त सदस्यों ने एक मत होकर सभा अध्यक्ष को अधिकार देकर उनसे निम्न लिखित वक्तव्य प्रकाशित करने का निवेदन किया

वक्तव्य

यह दुर्भाग्य की बात है कि हमारी स्वतन्त्रता की बीसवीं वर्ष गांठ को संख्या में नरेशों को जिनमें से बहुत सों ने संविधान सभा में स्वतन्त्रता के सह शिल्पी के रूप में पूर्ण सहयोग दिया है यहाँ उन्हीं संधि पत्रों एवं समझौतों के विषय में जिन्होंने संगठित भारत का निर्माण किया है उठने वाले मामलों पर विचार करने के लिए एकत्रित होना पड़ा है। हम वर्तमान प्रस्ताव पर शोक प्रगट करने और उसे वापस लेने के लिये कहने के अतिरिक्त

और कुछ नही कर सकते। वास्तव मे इन सधि पत्रो एव समझौतो को तोडना विश्वास घात के अतिरिक्त और कुछ नही है।

भारतीय परम्परा

"दिये हुए वचनो के प्रति सच्चे रहना भारत की परम्परा है और हम यह कह सकते है कि यह भारतीयो के चरित्र मे स्वाभाविक है। इस मामले मे केवल मौखिक रूप से नही कहा गया है वल्कि ये पवित्र सधि पत्र है जोकि सावधानी के साथ विचार विमर्श करने के वाद किए गए है। यदि भारत सरकार इन वचनो का परित्याग करने की इच्छा करती है तो यह उन भारतीय परम्पराओ के मूल्यो को कम करना होगा जिन पर भारत के हर नागरिक को गर्व है, और इस कार्य से प्रतिज्ञा शव्द ही निरर्थक हो जाएगा। भारत सरकार राष्ट्रीय सम्मान और नैतिक मूल्यो की केवल सरक्षक ही नही है वल्कि विश्व मे भारत की प्रतिष्ठा के लिए भी उत्तरदायी है।

जहाँ तक हमारा सम्वन्ध है यह प्रश्न केवल प्रिवीपर्स का ही नही है, यद्यपि यह हम सवके लिए महत्वपूर्ण है, किन्तु यह तो सिद्धान्त का विषय है। भारतीय होने के नाते इन नैतिक सिद्धान्तो से हमारा सम्वन्ध है जोकि समाज का आधार है, उस न्याय से जोकि राज्य का आधार है, उस सम्मान से जो भारत की प्रतिष्ठा का आधार है · वह आधार वहक जाएगा। इन सवके लिए भारत के नरेश सगठित है। यह प्रसन्नता की वात है कि इस घटना ने नरेशो मे एकता की एक नई रुचि और परस्पर भाई चारे को जागृति कर दिया है।

गम्भीर समस्याये

सचमुच ही यह अजीव वात है, कि ये लोग ठीक वही है, जिन्होने भारतीय एकता का निर्माण करने मे सहायता दी। अव उन्ही के साथ उपेक्षा का व्यवहार किया जा रहा है जोकि किसी प्रकार से उचित नही कहा जा सकता। देश के सम्मुख गम्भीर समस्यायें है, जिन पर सरकार को अति आवश्यक रूप मे ध्यान देकर अपनी शक्ति लगानी चाहिए।

हम यह साधिकार कह सकते है कि भारत की भौगोलिक एकता के निर्माण मे हमने एक छोटी सी भूमिका पूरी की है और यह विचार करते है कि जो योगदान हमने अभी हाल ही के भूतकाल मे दिया है वह केवल कर्त्तव्य निभाने की उत्सुकता थी जिसे कि हमे भारतीय जनता के लिए करना चाहिए था क्योकि हमारे सामने राष्ट्र को सुदृढ़ एव समृद्धिशाली वनाने का कार्य था। जैसे कि हम सदैव से, इस देश के प्रति अपने उत्तरदायित्वो और देश की सेवाओ के लिए, अपनी परम्पराओ के अनुसार सजग रहे है।

हम यह अत्यधिक प्रस नता है कि अब भी वे लोग मौजूद हैं जो नतिक मूल्यों और दिए हुए वचनो की पवित्रता को श्रेष्ठ मानते हैं और उसम हम भारत के स्वतन्त्र पत्रों को भी सम्मिलित करत हैं जो कि अपने निष्पक्ष दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने म स्पष्ट और निर्भय रहे हैं।

इस अवसर हम पर अपना विश्वास प्रगट करत हैं कि अखिल भारतीय काग्रेस महासमिति जोकि अपनी महान् देश भक्ति और परम्पराओ के लिए दृढतापूर्वक कह सकती है इस विषय पर उचित रूप से पुन विचार करगी और अधिक शा त चित्त एव सत्यता के साथ इस पर काय करेगी।



जनवाणी

भारतीय दशन मे नैतिक व्यवस्था पर सर्वाधिक बल दिया गया है और इसे ऋत कह कर पुकारा गया है। ऋग्वेद मे ऋत को सत्य से पहले उद्भूत बतलाया गया है ऋत च सत्य चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत (ऋग्वेद 10/190/1)। भारतीय मनीषियो ने ऋत को मानव जीवन क लिए नितान्त अनिवार्य माना है।

असत्य से हट कर सत्य के माग पर अग्रसर होना भर्तृहरि के अनुसार 'न्यायपथ का अनुसरण करना है। नीति शतक मे भर्तृहरि ने कहा है कि धीर पुरुष न्याय पथ स अपना पग कभी पीछे नही हटात न्याय्यात् पथ प्रविचलन्ति पद न धीरा।

अपने प्राप्य से स तुष्ट न होकर दूसरो के सुख या धन को हर लेने की प्रवृत्ति स्तेय कहलाती है। हमारे यहाँ इसे दानवी प्रवृति कहकर त्याज्य बतलाया गया है। इसके विपरीत औरो को हँसत देखो मनु हसो और सुख पाओ की प्रवृत्ति अस्तेय है। भारतीय जीवन की सचालिका प्रवृत्ति यही है। हमारे यहाँ तो बडे स्पष्ट शब्दो म उद्घोष किया गया है सर्वेऽपि सुखिन सन्तु सर्वे स तु निरामया। सर्वेभद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुखमाग भवेत।।' अर्थात् सभी सुखी हो, सभी निरोग हो सभी कल्याण के दर्शन करें और कभी किसी को किसी प्रकार का दुख न हो।

जिस राष्ट्र के जीवन मे ऋत की प्रधानता हो जिस राष्ट्र के वासी (धीर पुरुष) न्याय पथ स पग पीछे न हटाते हो और जिस राष्ट के जीवन की सचालिका प्रवृति अस्तेय हो उस राष्ट्र मे तथाकथित समाजवाद की दुहाई देकर पचास करोड व्यक्तियो द्वारा किये गए समझौता और दिए गए वचनो को भग करने की कुछ इने गिनो की कुमन्त्रणा किस प्रकार सफल हो सकती है।

सत्यमेव जयते जिस राष्ट्र का गौरव चिह्न हो, अपरिग्रह (त्याग) जिस राष्ट्र का सर्वोपरि जीवन मूल्य हो तथा 'प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई' जिस राष्ट्र का सांस्कृतिक मूल स्वर हो उस राष्ट्र में मुट्ठीभर स्तेयी की दुर्भावना पचास करोड की धर्मप्रियता के सामने कहाँ टिक सकती है।